प्राक्कथन

किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है कि जीवन-चरित एक प्रकार का दर्पण होता है। जैसे आरसी में मनुष्य अपने चेहरे की त्रुटियाँ देख लेता है और उनको दूर करने का यत्न करता है, वैसे ही चरित-रूपी आरसी मे, अपने स्वभाव मे लगे हुए, भूषण-दूषण और गुण-दोष दीख पड़ते हैं। तब दूषण को दूर करने और भूषण को बढ़ाने का उसे विचार उत्पन्न होता है। जो काम उपदेश देने या पढ़ाने से नहीं होता उसी को जीवन-चरित आसानी से कर सकता है।

उत्तम चरित पाठक को बताता है कि एक सामान्य मनुष्य भी अपने जीवन को कहाँ तक उत्तम बना सकता, कितने ऊँचे काम कर सकता और जगत् में कहाँ तक अच्छा प्रभाव डाल सकता है।

चरितों के पाठ से हमारी चेतना सतेज होती है। हमारी आशा में जीवन आता है। हममे नई शक्ति, साहस और श्रद्धा

आती है। हम अपने ऊपर और दूसरों पर श्रद्धा रखना सीखते हैं। हममे महत्त्वाकाक्षा जागती है। हम सत्कार्यों मे लगते है। उत्तम चरितों का पाठ एक प्रकार से महापुरुषों की सङ्गति करने के समान है।

ससार के प्रायः सभी देशों मे, समय समय पर, महापुरुष जन्म लेते रहे हैं। उनकी जीवन-घटनाओं से संसार के सभी नर-नारी लाभ उठा सकते है। कारण यह कि सच्चे महापुरुष पर किसी देश-विशेष अथवा जाति-विशेष का इजारा नहीं रहता। वह देश, काल और जाति की सीमा को पार करके एक ऐसे उच्च शिखर पर पहुँच जाता है जहाँ वह समस्त मनुष्य-जाति को अपना प्रतीत होने लगता है।

केवल एक ही देश के महापुरुषों के जीवन-चरित पढ़ने अथवा केवल स्वदेशी महात्माओं का ही सम्मान करने से मनुष्य का हृदय सङ्कीर्ण रह जाता है। यह हृदय की सङ्कीर्णता जहाँ विश्व-बन्धुता के लिए घातक है वहाँ मनुष्य को गुणग्राहक भी नहीं रहने देती। भिन्न-भिन्न परिस्थितियो, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों, भिन्न-भिन्न जातियों और भिन्न-भिन्न समयों मे जन्म लेकर महान् आत्माओं ने किस प्रकार जन-समाज की सेवा की, इसका ज्ञान मनुष्य की उन्नति के लिए परम आवश्यक है।

इस छोटी सी पुस्तक मे बारह महान् स्त्री-पुरुषों की सक्षिप्त जीवन-कथाएँ दी गई हैं। इनमें से दस का जन्म योरप के विभिन्न देशों मे हुआ था और दो का भारत मे। इन सब का

कार्यक्षेत्र भी एक नहीं था। इनमे से कोई योद्धा था, कोई दार्शनिक, कोई कवि, कोई वैज्ञानिक, कोई नाटककार, कोई नृपति और कोई धर्म-प्रवर्तक। एक दूसरे से भिन्न कार्य करके भी वे संसार में चमके थे और तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति पर उनकी गहरी छाप पड़ी थी।

लम्वे जीवन-चरितों का कलेवर प्रायः अनावश्यक बातें भरकर वढ़ा दिया जाता है। वालटेअर अपनी "मोलियर की जीवन-कथा" नामक छोटी सी पुस्तक का आरम्भ इन शब्दों मे करता है:—

"अनेक पाठकों की रुचि तुच्छ एवं निःसार वातों की ओर होती है और उनकी इच्छा यही रहती है कि जो बात थोड़े से पन्नों में कही जा सकती है उसे वढ़ाकर एक पोथा वना दिया जाय। इसी से छोटी छोटी निकम्मी वातों एवं अद्‌भुत प्रचलित कथाओं को, जो जितनी झूठी होती हैं उतनी ही नीरस भी, डाल-कर प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन-चरितों को प्रायः सदैव नष्ट कर दिया जाता है।"

आदर्श जीवन-चरित किसी पुरुष के जीवन की वह सुलिखित कथा है जो सम्पूर्ण, सत्य और किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखी गई हो जो उसका परिचित था। इसमे वह प्रत्येक वात रहती है जो उसके शील, उसकी वुद्धि, उसके शरीर और कार्य पर प्रकाश डालने का काम देती है। यह लालसा, ममता और कल्पना, विना किसी पक्षपात या पूर्व संस्कार के, विवेकपूर्वक

लिखी जाती है। परन्तु ऐसे जीवन-चरितों का मिलना बड़ा कठिन है। बहुत सी जीवनियाँ तो "एकपक्षीय", "अविश्वास्य" या "व्यवहार में आने के अयोग्य" ही हैं।

जीवन-चरित में प्रत्येक बात महत्त्वपूर्ण हो सकती है। इसलिए इस पुस्तक मे अनेक नियमविरुद्ध वृत्तान्त भी दे दिये गये है। सेंट साइमन संसार का एक महान् चरित-लेखक हो गया है। वह कहता है, मैंने चौदहवें लुइस के सम्बन्ध में ऐसी प्रासङ्गिक कथाएँ लिखी हैं जिनको मेरे सहयोगी एक इतिहास-लेखक की शान के शायाँ न बताकर बुरा कहेगे। परन्तु सेंट साइमन अपने समय के लिए ही नहीं लिख रहा था। वह समझता था कि आनेवाली पीढ़ियो के लिए तुर्क राजदूत के साथ महाराजा की भेंट के लम्बे-चौड़े वर्णन की अपेक्षा मेरी पुस्तक अधिक मनोरञ्जक जान पडेगी। और उसका अनुमान ठीक ही था।

प्राय: जीवन-चरितों में चरित-नायक की प्रशंसा के पुल बाँधकर उसे एक ऐसा निर्भ्रान्त, अलौकिक और सर्व-गुण-सम्पन्न पुण्यात्मा प्रकट करने का यत्न किया जाता है जिसमे कोई भी त्रुटि न थी। इससे पाठक उसे अपने जैसा एक गुण-दोषमय सामान्य मानव न समझकर किसी दूसरे ही लोक की विभूति समझने लगते हैं, जो कुछ काल के लिए संसार मे मानव-लीला करने आई थी। ऐसी धारणा हो जाने से हम उसके जीवन से विशेष लाभ नहीं उठा सकते। देवलोक की कोई आत्मा

मर्त्यलोक में आकर यदि कोई अद्भुत कार्य कर जाय तो इसमें उसकी वड़ाई ही क्या है ! फिर उसका अनुकरण करना भी सामान्य मनुष्यों की शक्ति से बाहर है। साधारण सर्वहारा मनुष्यों में से सुकरात, बुद्ध, सिकन्दर, न्यूटन और शिवाजी प्रभृति नर-रत्न निकल सकते हैं, यह वात कुछ कम चमत्कार की नहीं। इनके जीवन-वृत्तान्तों से हमारे मन में भी उत्साह बढता है कि चाहे तो यत्न करके हम भी उनके समान महान् कार्य कर सकते हैं। इसलिए यह स्पष्ट कह देना आवश्यक है कि इस पुस्तक मे जिन स्त्री-पुरुषों के चरितों की झाँकियाँ दी गई हैं वे मानव-प्राणी थे, दूसरों पर संस्कार डालते थे और दूसरों के संस्कार उन पर पड़ते थे। हमारे इस जगत् को उन्होंने कुछ दिया है। यही बात हमारे मन पर सबसे अधिक प्रभाव डालती है।

इस पुस्तक में जो सामग्री दी गई है उसमें से अधिकांश ऐसी है जो पहले हिन्दी मे नहीं मिलती। यह उन लेखों और प्रवन्धों से सङ्कलित की गई है जो मूलतः फ्रेञ्च, जर्मन, ग्रीक और लेटिन आदि भाषाओं मे उन लोगों द्वारा लिखे गये थे जो या तो चरित-नायकों के समकालीन थे या जिनको उनका बहुत अच्छा ज्ञान था। उन लेखकों के नाम जीवन-कथाओं के आरम्भ में दे दिये गये हैं। इन लेखकों ने अपने प्रवन्धों मे चरित-नायकों के जहाँ सद्गुणों का वर्णन किया है, वहाँ उनके दुर्गुणों को छिपाने का यत्न नहीं किया।

इस पुस्तक की तैयारी में मुझे "दि शॉर्ट ग्रेट वायोग्राफीज़ ऑव दि वर्ल्ड" से वड़ी सहायता मिली है। खेद है कि भारतीय भाषाओं में ऐसे जीवन-चरितों का वड़ा अभाव है। महात्मा गाँधी की "आत्म-कथा" के सिवा मुझे तो कोई ऐसी पुस्तक नहीं मिली, जिसमें किसी महापुरुष के जीवन के शुक्ल पक्ष के साथ साथ उसका कृष्ण पक्ष भी दिखाया गया हो।

साहित्य-सदन,
कृष्णनगर—लाहौर। } सन्तराम

विषय-सूची

सुकरात

विश्व की विभूतियाँ
अर्थात्
जीवन-कथामाला

सुकरात

४६९ से ३९९ ईसा पूर्व तक

[डायोजीनस लेअरटियस रचित "प्रतिष्ठित तत्त्वज्ञानियो के जीवन-वृत्तान्त" के आधार पर]

तत्त्वज्ञानी सुकरात यूनान देश के अन्तर्गत एथन्स नगर के निवासी थे। इनका पिता, सोफ्रोनिसस, पत्थर की मूर्तियाँ बनाया करता था और माता, फीनारटी, एक दाई थी। सुकरात ने ही पहले पहल पश्चिम मे वाग्मिता की शिक्षा दी। इन्हीं ने सबसे पहले जीवन को बिताने की रीति पर उपदेश दिये, और यही पहले दार्शनिक थे जिनको, नवयुवकों को पथभ्रष्ट करने का आरोप लगाकर, प्राण-दण्ड दिया गया।

लोग सुकरात की युक्तियों की ताव न लाकर उन पर झुँझलाते थे। अनेक बार क्रोध के आवेश मे वे लोग इनके बाल तक उखाड़ डालते थे। वे इनकी खिल्ली उड़ाते और तिरस्कार करते

थे। इस पर भी सुकरात उनके इस सारे दुर्व्यवहार को शान्तिपूर्वक सह लेते थे। एक समय की बात है कि लोगों ने सुकरात को लातें मारीं, परन्तु वे पूर्ववत् शान्त रहे। इस पर एक दर्शक ने आश्चर्य से इसका कारण पूछा तब सुकरात बोले—"यदि कोई गधा मुझे दुलत्तियाँ मारे, तो क्या मुझे भी उसी प्रकार उसे लातें मारनी चाहिए?"

दूसरे दार्शनिकों की तरह सुकरात को देशाटन का शौक नहीं था। वे प्रायः घर पर ही रहते थे। वे अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिए नियमपूर्वक व्यायाम करते थे। उनकी इच्छाशक्ति बडी प्रबल थी। वे जिस बात को सत्य समझते थे, निडर होकर कह देते थे। एक बार दस सेनापतियो से कोई अपराध बन पड़ा। सब लोगों ने उनको दण्ड देने का मत दिया। अकेले सुकरात का मत उनको मुक्त कर देने के पक्ष मे था। फिर जब सुकरात कारागार मे बन्द थे और उनको वहाँ से भाग जाने का अवसर प्राप्त था, तो उन्होंने भागने से साफ इनकार कर दिया। जो मित्र उनके लिए रो रहे थे उनकी सुकरात ने भर्त्सना की और एक अत्युत्तम उपदेश दिया।

सुकरात स्वतन्त्रता एवं चरित्र की प्रतिष्ठा के धनी थे। एक समय की बात है, अलसिबिएडस नाम के एक धनी मनुष्य ने उन्हे मकान बनाने के लिए बहुत सी जगह देना चाहा। इस पर उन्होंने जगह लेने से इनकार करते हुए कहा—"मान लीजिए, कि मुझे एक जोड़ा जूतों की आवश्यकता हो, और आप मुझे जूता

बनाने के लिए पूरी खाल देना चाहे, तो क्या इसे लेना, मेरे लिए हास्यजनक न होगा?" बहुधा जब कभी वे कहीं बहुत सी वस्तुएँ बिक्री के लिए रक्खी हुई देखते तो मन ही मन कहते—"मैं कितनी वस्तुओं के बिना ही गुज़र कर सकता हूँ।"

अरस्तू कहता है, सुकरात की दो स्त्रियाँ थीं। उनकी पहली स्त्री का नाम ज़ेंथिप्पी और दूसरी का माईर्टो था। ज़ेंथिप्पी से उन्हे लेम्परोक्लस नाम का एक बेटा था।

सुकरात का जीवन बड़ा सादा था। वे कभी किसी से दक्षिणा नहीं माँगते थे। वे कहा करते थे कि मुझे वह भोजन सबसे अधिक भाता है जिसके साथ अचार-चटनी की आवश्यकता नहीं होती, पेय वह अच्छा लगता है जिसे पीने के बाद किसी दूसरे पेय की लालसा नहीं रहती, और मै अपने को देवताओं के निकटतम इसलिए समझता हूँ कि मेरी आवश्यकताएँ बहुत ही कम है। एक ही पुण्य है और वह है ज्ञान, एक ही पाप है, और वह है अज्ञान। धन और उत्तम जन्म से मनुष्य को प्रतिष्ठा नहीं मिलती, प्रत्युत इसके विपरीत बुराई आती है।

सुकरात ने बुढ़ापे मे वीणा बजाना सीखा। उनका नियमपूर्वक नाचने का स्वभाव था, क्योकि उनका विचार था कि इस से शरीर स्वस्थ रहता है।

एक व्यक्ति ने सुकरात से पूछा—"मुझे विवाह करना चाहिए या नहीं?" इस पर उन्होंने उत्तर दिया—"आप व्याह करे चाहे न करे, दोनों दशाओं मे आपको पछताना पड़ेगा।"

सुकरात युवकों को दर्पण देखने का उपदेश किया करते थे, ताकि सुन्दर युवक अपने चरित्र को भी सुन्दर बनावें और कुरूप अपने दोषों को शिक्षा द्वारा छिपाने का यत्न करे।

सुकरात ने एक बार कुछ धनी लोगों को भोजन के लिए निमंत्रण दिया। ज़ेथिप्पी ने कहा कि मुझे ऐसा घटिया भोजन देते लज्जा होगी। इस पर सुकरात बोले—"कुछ परवा नहीं। यदि वे समझदार होंगे तो इसे सहन कर लेंगे, और यदि वे निकम्मे हैं, तो हमे उनके विषय मे कष्ट करने की आवश्यकता नहीं।" वे कहा करते कि "दूसरे लोग तो खाने के लिए जीते है, परन्तु मै जीने के लिए खाता हूँ।"

एसचीनस नाम के एक व्यक्ति ने सुकरात से कहा—"मै निर्धन हूँ। मेरे पास आपको देने के लिए अपने आपके सिवा और कुछ नहीं।"

इस पर सुकरात बोले—"वाह, क्या आप नहीं देखते कि आप मुझे सबसे बड़ा दान दे रहे हैं?"

एक व्यक्ति ने सुकरात से कहा—"एथन्स-निवासियों ने आपको दोषी ठहराकर मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी है।" इस पर उन्होंने उत्तर दिया—"उनके प्रति भी निसर्ग की यही आज्ञा है।"

एक व्यक्ति ने सुकरात को एक सुन्दर कपडा दिया ताकि वे मरते समय इसे पहन ले। इस पर वे बोले—"क्या, क्या मेरा अपना कपडा केवल जीते जी पहनने योग्य है और मरते समय पहनने योग्य नही?"

जेंथिप्पी बड़ी कर्कशा थी। वह सदा उनसे लड़ती-झगड़ती रहती थी। परन्तु सुकरात बड़े शान्त थे। एक बार वह बहुत बकी, झकी। बाद को उसने उन पर मैले पानी का पतीला उँडेल दिया। इस पर वे इतना ही बोले—"क्या मैंने नहीं कहा था कि ज़ेंथिप्पी इतना गरजने के बाद बरसे बिना न रहेगी।" जब अलसिबिएडस ने कहा कि ज़ेंथिप्पी की भर्त्सना असह्य है, तो वे बोले—"नहीं, मुझे इसे सुनने का ऐसा ही स्वभाव हो गया है जैसा मशीन की खटखट सुनने का। आप बत्तखों की घें घें को सहते है या नही ?"

"परन्तु बत्तखें तो मुझे अण्डे और चूज़े देती हैं।"

सुकरात—"और ज़ेंथिप्पी मेरे बच्चों की माँ है।"

एक समय की बात है कि ज़ेंथिप्पी ने बाज़ार मे सुकरात का कोट फाड़ डाला। सुकरात के मित्रों ने सलाह दी कि इसके दण्ड-स्वरूप आप भी उसे पीटे। परन्तु सुकरात ने कहा—"जिस प्रकार चाबुक-सवार दुष्ट घोड़ों के अनुरागी होते हैं, उसी प्रकार मै एक चिडचिड़ी स्त्री के साथ रहता हूँ, परन्तु जिस प्रकार सवार जब उन घोड़ों को काबू मे कर लेते है तो दूसरों को आसानी से काबू मे रख सकते हैं, उसी प्रकार ज़ेंथिप्पी की सङ्गति मे मै शेष जगत् का सामना करना सीखता हूँ।" ऐसी ही बातों के कारण सुकरात उस युग मे सबसे अधिक बुद्धिमान् मनुष्य माने जाते थे।

जो लोग अपने को बहुत बड़ा समझते थे उनको सुकरात मूर्ख सिद्ध करके उनकी खूब खबर लेते। इससे चिढ़ कर एनीटस ने कुछ लोगों को उनके विरुद्ध भड़काया। उसके बहकाने से मेलेटस ने सुकरात पर नास्तिकता एवं नवयुवकों को बिगाड़ने का दोष लगाया और तकाजा किया कि उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया जाय।

सुकरात के मित्र लाईसिअस ने उनके लिए जवाबदावा लिखा। परन्तु जब वह सुकरात ने पढा तो वे बोले—"लाईसिअस, यह एक उत्तम भाषण है, परन्तु मेरे उपयुक्त नहीं है।" क्योंकि वह जवाबदावा स्पष्ट रूप से उतना दार्शनिक नहीं था जितना कि अदालती था। लाईसिअस ने कहा—"यदि यह उत्तम भाषण है तो फिर आपके उपयुक्त क्यों नही?" इस पर उन्होंने उत्तर दिया—"क्यों, क्या सुन्दर परिधान और सुन्दर जूते भी मेरे लिए उतने ही अनुपयुक्त नहीं?"

अरस्तू कहता है कि सिरिया देश से एक जादूगर एथन्स में आया था। उसने भविष्यवाणी करते हुए सुकरात से कहा था कि आप अपघात से मरेंगे।

सुकरात को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा हुई। जिस दिन उनको विष का प्याला पीना था वह दिन उन्होंने जेल में मित्रों से बातें करते करते बिता दिया। उनकी प्रार्थना पर, गोद में बच्चे को लिये, रुदन करती हुई उनकी भार्या को घर भेज दिया गया था। जब शोकातुर जेलर विष का प्याला लाया तो सुकरात ने उससे

पूछा कि मै क्या करूँ। उत्तर मिला, जब तक आपकी टाँगे भारी न हो जायँ तब तक टहलते रहिए और फिर लेट जाइए। सुकरात ने प्याला मुँह को लगाया और गट गट पी लिया।

जब मित्रों ने देखा कि विष का प्याला ख़ाली हो गया, तो वे अपने आँसुओं को न रोक सके। उस समय अकेले सुकरात ही शान्त थे। वे बोले—"यह विचित्र चीत्कार क्या है? मैंने सुन रक्खा है कि मनुष्य को शान्ति से मरना चाहिए। इसलिए शान्त हूजिए और धैर्य रखिए।"

सुकरात की टाँगों ने जब तक काम दिया, वे इधर से उधर टहलते रहे, फिर लेट गये। विष धीरे धीरे चढ़ता गया, यहाँ तक कि उनका शरीर अकड़कर ठण्डा हो गया। परन्तु बोलने की शक्ति बन्द होने के पूर्व उन्होंने कहा—"क्राईटो, मुझे एस्कूलेपियस को एक कुक्कुट देना है। क्या तुम मेरा यह ऋण चुका दोगे?"

क्राईटो ने कहा—"यह ऋण चुका दिया जायगा। क्या कुछ और भी कहना है?"

पर इसका कोई उत्तर नहीं मिला। इस प्रकार सत्तर वर्ष की आयु में सुकरात का देहान्त हो गया।

सिकन्दर महान्

३५६ से ३२६ ईसा पूर्व तक

[प्लूटार्च (लगभग सन् ५० से सन् १२० ईसवी तक)
कृत "लाईव्ज़" के आधार पर]

ध्यान रखिए कि इस प्रबन्ध मे सिकन्दर के जीवन की प्रत्येक घटना देने का यत्न नहीं किया गया, वरन् उसकी जीवन-कथा के प्रसिद्ध प्रसिद्ध अंश ही दिये गये हैं। कारण यह है कि उद्देश्य इतिहास लिखना नहीं, वरन् जीवन-चरित लिखना है। वीरता के बड़े बड़े कार्य मनुष्यों के सद्गुणों और दुर्गुणों का पता नहीं देते; प्रत्युत कभी कभी एक कम महत्त्व की बात, एक वाक्य या मजाक उनके चरित्रों एव प्रवृत्तियों का उससे अधिक ज्ञान करा देता है जितना कि अतीव प्रसिद्ध युद्ध, बड़े से बड़े सेना-दल, या क्रूरता-पूर्ण लडाइयाँ करा सकती हैं। इस प्रबन्ध मे सिकन्दर की आत्मा की झाँकी दिखलाने का यत्न किया गया है, उसकी बडी बडी लड़ाइयों के वर्णन का नहीं।

सिकन्दर के पिता का नाम फ़िलिप और माता का नाम ओलिम्पियास था। इन दोनों का विवाह सम्पन्न होने के एक रात पहले, ओलिम्पियास को स्वप्न हुआ कि उसके शरीर पर वज्रपात हुआ, जिससे एक अखण्ड अग्नि प्रज्वलित हो उठी।

सिकन्दर

उस अग्नि की शिखाएँ सब ओर फैल गईं, और फिर बुझा दी गईं। विवाह हो जाने के कुछ काल उपरान्त फिलिप को स्वप्न हुआ कि उसने अपनी भार्या की देह पर एक छाप लगा दी है और उस छाप मे सिंह का चित्र है। इस पर एक भविष्यद्वक्ता ने बताया कि यह स्वप्न इस बात का द्योतक है कि रानी के गर्भ से ऐसा बालक जन्म लेनेवाला है जो एक दिन सिंह के समान साहसी और बलवान् होगा।

यूनानी लोग देवी-देवताओं और भविष्यद्वक्ताओं को वहुत मानते थे। जिस दिन सिकन्दर का जन्म हुआ उसी दिन डायना देवी के मन्दिर में आग लग गई, जिसमे जलकर वह भस्म हो गया। उस समय मन्दिर की स्वामिनी सिकन्दर के जन्म पर सहायता देने बाहर गई थी। मन्दिर को भस्मीभूत हुआ देख सभी पूर्वी भविष्यवक्ताओं ने कहा कि यह किसी दूसरी आगामी विपत्ति का पूर्व-चिह्न है। वे रोते और सिर पीटते हुए नगर में दौड़ने लगे कि यह दिन कोई ऐसी चीज़ लाया है जो सारे एशिया खंड के लिए घातक एवं ध्वंसकारी सिद्ध होगी।

एरिस्टाकसीनस अपने "वृत्तान्त" मे कहता है कि सिकन्दर की त्वचा से बड़ी ही रुचिकर सुगंधि निकलती थी, और उसकी साँस तथा सारा शरीर इतना महकता था कि उसके शरीर के कपड़े भी महकने लगते थे। इसका कारण कदाचित् उसके शरीर की गरम एवं झुलसी हुई प्रकृति रहा हो।

सिकन्दर बचपन से ही बड़ा साहसी और महत्त्वाकांक्षी था। लोग उसकी योग्यता को देखकर दंग रह जाते थे। वे लोग उसके पिता की योग्यता को उसकी तत्परता और उच्च उद्देश्य के सामने तुच्छ समझते थे। जब कभी सिकन्दर सुनता कि फिलिप ने कोई महत्त्वपूर्ण नगर लिया है या कोई विशेष विजय प्राप्त की है, तो इस पर प्रसन्नता प्रकट करने के बजाय, वह अपने साथियों से कहता कि मेरे पिता सब काम कर जायँगे, और मेरे लिए तथा आपके लिए महान् एवं यश देनेवाला कार्य करने के अवसर नहीं रहने देंगे।

एक दिन कोई व्यापारी बूसफेलूस नाम का एक बहुमूल्य घोड़ा फिलिप के पास बेचने के लिए लाया। परन्तु जब मैदान मे ले जाकर उसकी परीक्षा करने लगे तो वह इतना दुष्ट और दुर्दमनीय निकला कि ज्योंही कोई उस पर सवार होने की चेष्टा करता, वह पिछले पाँवों के बल खडा हो जाता। इसलिए फिलिप ने उसे निकम्मा समझ कर लेने से इनकार कर दिया। जब वह व्यापारी घोडे को लौटाये लिये जा रहा था तो सिकन्दर बोल उठा—"घोडे को काबू मे करने का ढंग न जानने और दिलेरी न होने के कारण ये लोग कितना अच्छा घोडा खो रहे है!" पहले तो फिलिप ने उसकी बात पर कुछ ध्यान न दिया, परन्तु जब सिकन्दर ने कई बार वही शब्द दुहराये तो उसने कहा—"क्या तुम अपने से बड़ों को इसलिए दोष दे रहे हो, मानो तुम उनसे अधिक जानते हो और उनकी अपेक्षा अधिक अच्छी

तरह से घोड़े को क़ाबू मे कर सकते हो ?" उसने उत्तर दिया—"मै इस घोड़े को दूसरों की अपेक्षा अधिक उत्तमता से सँभाल सकता हूँ।" इस पर फिलिप ने कहा—"यदि तुम उसे सँभाल न सके, तो अपनी उद्दण्डता के लिए क्या हर्जाना दोगे ?" सिकन्दर ने उत्तर दिया—"घोड़े का सारा मूल्य चुका दूँगा।" यह सुनकर सब लोग हँस पड़े। जब बाजी का निश्चय हो गया तो सिकन्दर ने झपटकर घोड़े की लगाम पकड़ ली और चटपट उसका मुँह सूर्य की ओर फेर दिया। यह इसलिए कि वह समझ गया था कि घोड़ा अपनी ही छाया से डरता है। फिर उसकी वाग हाथ मे पकड़े हुए उसे थोड़ा आगे को चलने दिया। साथ साथ वह उसे थपकियाँ भी देता जा रहा था। जब उसने देखा कि अब वह गरम और तत्पर हो गया है तो छलाँग मारकर वह झट उसकी पीठ पर जा बैठा। उसने थोडा थोड़ा करके लगाम को खींचकर, विना मारे अथवा एँड लगाये ही, उसे क़ाबू मे कर लिया और ख़ूब सरपट दौड़ाया। यह देखकर फिलिप और उसके साथी आश्चर्य-चकित रह गये। जब सिकन्दर घोड़े को घुमा-फिरा कर वापस लाया तो फिलिप के हर्ष का ठिकाना न था। प्रसन्नता से उसके नेत्रों मे जल आ गया। उसने सिकन्दर का चुम्बन करते हुए कहा—"मेरे पुत्र, अपने तुल्य और उपयुक्त कोई दूसरा राज्य ढूँढ़ो, क्योंकि मेसीडोनिया का राज्य तुम्हारे लिए वहुत छोटा है।"

उस समय अरस्तू सवसे प्रसिद्ध और विद्वान् दार्शनिक था। फिलिप ने उसी को सिकन्दर की शिक्षा के लिए नियुक्त किया।

सिकन्दर ने उससे न केवल आचार-शास्त्र और राजनीति के ही सिद्धान्त पढ़े वरन् उन अधिक दुर्बोध और गूढ वादों का भी ज्ञान प्राप्त किया जो वह मौखिक रूप से ही अपने दीक्षित विद्यार्थियों को वताया करता था। जिन दिनों सिकन्दर एशिया मे युद्ध कर रहा था, उन दिनों उसने सुना कि अरस्तू ने अपने वे गूढ वाद छपवा दिये हैं। इस पर उसने उसे लिखा—"सिकन्दर का अरस्तू को प्रणाम। आपने अपने मौखिक उपदेश की पुस्तके छापकर अच्छा नहीं किया, क्योंकि जिन वातों की हमने विशेप रूप से शिक्षा पाई है वे सव के सामने खोलकर रख दी जायँगी तो हम किस वात मे दूसरों से उच्चतर समझे जायँगे? विश्वास कीजिए, मैं तो प्रभुता और राज्य मे दूसरों से वढने की अपेक्षा जो चीज श्रेष्ठ है उसके ज्ञान मे ही दूसरों से वढ़ना पसन्द करता हूँ।" इतना ही नहीं, सिकन्दर महाकवि होमर-कृत इलियड्स की प्रति अपनी कृपाण के साथ ही साथ तकिया के नीचे रखकर सोया करता था और कहा करता था कि मैं इसे समूचे सैनिक सद्गुण एव ज्ञान का वहनीय भण्डार समझता हूँ। वह अरस्तू का उपकार मानता हुआ कहा करता था कि पिता ने यदि मुझे जन्म दिया है तो अरस्तू ने उस जन्म को सफल वनाने की विद्या सिखाई है। पिता भी सिकन्दर की वीरता से इतना प्रसन्न था कि प्रजा के मुख से अपने को उनका सेनापति और सिकन्दर को उनका राजा कहते सुन उसकी प्रसन्नता की सीमा न रहती थी।

फिलिप ने क्लियोपेट्रा नाम की एक नवयुवती से विवाह किया। इससे ओलिम्पियास ने सिकन्दर को उसके पिता के विरुद्ध भड़काया। एक दिन मदिरा के नशे मे क्लियोपेट्रा के चचा ने कहा—हे मेसेडोनिया-निवासियो, देवगण से प्रार्थना कीजिए कि मेरी भतीजी के गर्भ से मेसेडोनिया के राज्य का औरस उत्तराधिकारी जन्म ले।" इस पर सिकन्दर इतना चिढ़ा कि उसने मद्य का प्याला उसके सिर पर दे पटका और कहा—"पाजी कहीं का, तो क्या मैं जारज सन्तान हूँ?" इस पर फिलिप क्रोध मे भरकर सिकन्दर को मारने दौडा। परन्तु मदिरा के नशे मे वह लड़खडाकर गिर पडा। तब सिकन्दर ने कहा—"यह देखिए, यह वह मनुष्य है जो योरप से निकलकर एशिया को विजय करने की तैयारियाँ कर रहा है। वह एक स्थान से उठकर दूसरे स्थान मे जाने मे इस प्रकार मुँह के बल गिरा पडा है।" इसके बाद माता और पुत्र दोनों फिलिप को छोड़कर चले गये।

इन्हीं दिनों डीमार्टस, जो उनके परिवार का मित्र था, फिलिप से मिलने आया। फिलिप ने उससे पूछा—"हमारी यूनानी प्रजा आपस मे प्रेमपूर्वक तो रहती है?" इस पर डीमार्टस ने उत्तर दिया—"जब आपने अपने घर मे ही इतने झगड़े और विपत्तियाँ उत्पन्न कर रक्खी हैं तो आपको यूनान के बारे मे ऐसा प्रश्न पूछना शोभा नहीं देता।" इसका फिलिप पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने तुरन्त अपने पुत्र को बुलाकर उसके साथ सुलह कर ली।

सिकन्दर बीस ही वर्ष का था कि किसी ने अवसर पाकर फिलिप की हत्या कर डाली। सिकन्दर ने षड्यंत्रियों का पता लगाकर सबको दण्ड दिया। वह अपनी माता ओलिम्पियास से भी नाराज हुआ कि आपने मेरी अनुपस्थिति में क्लियोपेट्रा के साथ अमानुषिक व्यवहार क्यों किया। जिस समय सिकन्दर गद्दी पर बैठा, उसका राज्य सब ओर से खतरो और उग्र शत्रुओं से घिरा हुआ था। इतना ही नहीं, ठेठ यूनान मे भी भारी गड़बड़ थी। सिकन्दर थीबस नगर के विद्रोह को दबाने के लिए उठा। उसने नगर-निवासियों से अधीनता स्वीकार कर लेने को कहा। परन्तु उन्होंने उलटा उसकी हँसी उड़ाई। तब उसने उन पर धावा बोल दिया। थीबसवाले हार गये। सिकन्दर इनको ऐसा दण्ड देना चाहता था जिससे दूसरे नगरों को भी शिक्षा मिले और वे विद्रोह छोड़कर अधीनता स्वीकार कर ले। उसने तीस सहस्र को तो दास बनाकर बाजार में बेच दिया और छः सहस्र से अधिक को तलवार के घाट उतार दिया। पुरोहितों और थोडे से दूसरे लोगों के सिवा, जो मेसेडोनिया के मित्र थे और विद्रोह के विरुद्ध थे, सब को दण्ड दिया गया।

कुछ सिपाही एक उच्च चरित्रवाली टिमोक्लिया नामक प्रतिष्ठित विवाहिता स्त्री का घर तोड़कर भीतर घुस गये। उनके कप्तान ने पहले तो उसके साथ बलात्कार किया, फिर उससे पूछा कि तुमने कहीं कोई धन तो नहीं छिपा रक्खा। टिमोक्लिया ने उत्तर

दिया—हाँ, मैंने धन छिपा रक्खा है; मेरे साथ उस वाटिका मे चलिए। वहाँ जाकर उसने एक कुआँ दिखाकर कहा कि नगर-विजय के पूर्व मैंने अपनी सारी बहुमूल्य वस्तुएँ इसमे फेंक दी थीं। लोभी कप्तान कुएँ मे झुककर देखने लगा कि ख़ज़ाना कहाँ रक्खा हुआ है। इतने मे टिमोक्लिया ने उसको पीछे से धक्का देकर कुएँ मे गिरा दिया। इसके बाद ऊपर से बडे बड़े पत्थर फेंककर उसे मार डाला। तत्पश्चात् जब सिपाही उसे पकड़कर सिकन्दर के पास ले जा रहे थे तो उसकी चाल और रग-ढग से ही दीखता था कि वह एक प्रतिष्ठित और उन्नतात्मा महिला है। उसके चेहरे पर भय या आश्चर्य की एक भी रेखा न थी। सिकन्दर ने पूछा—"आप कौन हैं?" इस पर उसने उत्तर दिया—"मै उस थिएजीनस की बहन हूँ, जो आपके पिता, फिलिप, के साथ कीरोनिया की लड़ाई में लड़ा था और यूनान की स्वतंत्रता के लिए जिसने वहीं वीरगति प्राप्त की थी।" सिकन्दर उस स्त्री के कर्म और वचन पर चकित रह गया और उसने उसे और उसके बच्चों को मुक्त कर दिया।

सिकन्दर स्थलडमरूमध्य मे ठहरा हुआ था। इधर-उधर से बहुत से तत्त्वज्ञानी उससे मिलने आये। परन्तु डायोजनीस नाम के एक तत्त्वज्ञानी ने उसकी कुछ भी परवा न की। इस पर सिकन्दर स्वयं उससे मिलने गया। उस समय वह धूप मे लेटा हुआ था। इतने मनुष्यों को अपनी ओर आते देख वह थोड़ा उठा। उसने सिकन्दर की ओर दृष्टि डालने की

कृपा की। सिकन्दर ने कृपापूर्वक पूछा—"आपको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो कहिए।" उसने उत्तर दिया—"हाँ, कृपया धूप छोड़कर खड़े हो जाइए।" यह उत्तर सुनकर सिकन्दर चकित रह गया। उस महापुरुष की महत्ता का सिकन्दर पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने अपने अनुयायियो से, जो तत्त्वज्ञानी के रूखेपन पर हँस रहे थे, कहा कि यदि परमेश्वर ने मुझे सिकन्दर न वनाया होता तो मैं डायोजनीस वनना पसन्द करता।

जिस समय सिकन्दर ने ईरान के राजा दारा पर चढ़ाई की तो कई प्रकार के अपशकुन हुए, परन्तु उसने उनका शुभ अर्थ निकाल कर अपने और अपनी सेना के उत्साह को शिथिल न होने दिया। ग्रेनिकस नदी के तट पर वड़ा भारी युद्ध हुआ। नदी के दूसरे तट पर दारा की प्रवल सेना खड़ी थी। सिकन्दर को नदी के तीव्र प्रवाह को चीर कर पार जाना था। इसके अतिरिक्त नदी का किनारा वहुत ऊँचा और कर्दममय था। तो भी सिकन्दर ने विजय प्राप्त की। ईरानियों की वीस सहस्र पैदल और ढाई सहस्र घुडसवार सेना लड़ाई मे काम आई। सिकन्दर की भी वहुत हानि हुई। उसके वहुत से अनुभवी योद्धा मारे गये। परन्तु अन्त को जीत उसी की हुई। सिकन्दर ने लूट की सारी वहुमूल्य वस्तुएँ भेट-स्वरूप अपनी माता के पास भेज दीं।

सिकन्दर ने जव फ्राईजियन लोगों को परास्त किया तो उनके प्रधान नगर, गोरडियम, मे उसे एक रथ मिला जो वृद्ध

की छाल के रस्सों से बाँधा गया था। लोगों मे यह बात प्रसिद्ध थी कि जो भी मनुष्य इसे खोलेगा वह सारे संसार पर राज्य करेगा। उसकी गाँठे बड़े गुप्त रूप से मरोड़ कर भीतर की ओर लपेटी हुई थी। सिकन्दर ने जब देखा कि मैं इन्हे खोल नहीं सकूँगा तो उसने अपने खड्ग से उसे काट डाला। इसके बाद उसकी विजय-यात्रा आरम्भ हुई और वह एशिया के ऊपरी प्रान्तों मे बढ़ता चला गया।

दारा ने इस समय सूसा नगर से कूच किया। उसके साथ छः लाख सेना थी। इसके अतिरिक्त उसने एक स्वप्न देखा जिसे उसके भविष्यद्वक्ताओं ने उसकी भावी विजय का पूर्वचिह्न बताया। सिकन्दर को, रुग्ण हो जाने के कारण, सिलिसिया में कुछ अधिक समय तक ठहरना पडा। दारा ने समझा कि वह कायर है और मेरे सामने आने से डरता है। इससे दारा को अपने स्वप्न पर विश्वास और भी दृढ़ हो गया। उधर सिकन्दर की दशा इतनी अधिक खराब हो गई कि वैद्यों ने उसे दवाई देने से इनकार कर दिया। उन्हे डर था कि यदि हमारी औषध से इसे आराम न हुआ तो सभी मेसेडोनियावाले हम पर सन्देह करेंगे और उनके मन मे हमारे प्रति दुर्भाव उत्पन्न हो जायगा। अकारनेनिया का फिलिप सिकन्दर का बड़ा मित्र था। उसने जब सिकन्दर की शोचनीय दशा देखी तो उसे दवा-दारू के अभाव से मरने देना उचित न समझा। उसने अपनी प्रतीति और जीवन को जोखिम मे डालकर भी अपनी ओषधि से उसे बचाने का

२

अन्तिम यत्न करने का निश्चय किया। उसने विश्वासपूर्वक सिकन्दर को दवा दे दी और कहा कि यदि आप जल्दी चङ्गे होकर युद्ध पर जाना चाहते हैं तो निडर होकर इसे खा जाइए। उसी समय पारमीनियो ने छावनी से सिकन्दर को लिखा कि देखना, फिलिप से सावधान रहना; क्योंकि दारा ने तुम्हे मरवाने के लिए उसे घूस के रूप में बहुत सा रुपया और अपनी पुत्री का डोला देने को कह रक्खा है। सिकन्दर ने जब चिट्ठी पढी तो उसे चुपचाप तकिये के नीचे दबाकर रख दिया और अपने पक्के से पक्के मित्र से भी इसका ज़िक्र न किया। जब फिलिप दवाई लेकर आया तो उसने बड़ी प्रसन्नता और विश्वास के साथ उसे पी लिया और साथ ही पढने के लिए उसे वह पत्र दे दिया। फिलिप का चिट्ठी पढ़ना, और उसी समय सिकन्दर का दवाई पीना और फिर मुडकर एक दूसरे को देखना, परन्तु भिन्न भिन्न भावना के साथ, एक दर्शनीय दृश्य था। कारण, सिकन्दर अपने चिकित्सक के प्रति कृपाभाव और विश्वास प्रकट करने के लिए प्रसन्न और प्रफुल्लवदन था, परन्तु दूसरा इस आरोप पर चकित और भयभीत हो रहा था। वह अपने को निरपराध बताते हुए देवताओं की दुहाई दे रहा था। वह सिकन्दर से प्रार्थना करता था कि डर को छोड़कर मेरी चिकित्सा बेखटके कराते जाइए। पहले तो उसकी दवा से सिकन्दर की दशा कुछ अधिक दुर्बल हो गई और वह मूर्च्छित हो गया, परन्तु जल्दी ही उसकी प्रकृति सुधर गई और वह चङ्गा हो गया।

सिकन्दर के स्वस्थ होने पर दारा से घोर सग्राम हुआ। दारा के कोई एक लाख दस हज़ार सिपाही मारे गये। उसकी हार हुई। वह किसी प्रकार जान बचाकर भाग गया। उसका बहुत सा माल और धन सिकन्दर के हाथ लगा। दारा के वैभव को देखकर सिकन्दर ने अपने निकट खडे लोगों से कहा—ऐसा जान पड़ता है, कि यह राजत्व है।

सिकन्दर सायंकाल का भोजन करने जा रहा था जब समाचार मिला कि दारा की माता, भार्या और दो क्वाँरी कन्याएँ भी पकड़ी गई हैं और दारा के रथ और धनुप को देख उसे मरा समझकर शोक और दुःख से व्याकुल हो रही हैं। सिकन्दर पर अपनी विजय की प्रसन्नता का उतना प्रभाव नहीं हुआ जितना उनके दुःख का। कुछ देर चुप रहकर उसने लियोनेटस के द्वारा उन्हे कहला भेजा कि दारा मरा नहीं, और आपको मुझसे डरने का कोई कारण नहीं, मैं आपको कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगा; मैंने तो केवल राज्य लेने के लिए लड़ाई की है, आप को वह सब सुख-सामग्री प्राप्त रहेगी जो दारा दिया करता था। इन शब्दों से और सिकन्दर के व्यवहार से उन वन्दी स्त्रियों को बड़ा सन्तोष हुआ। सिकन्दर ने उनको इतना सम्मान और सुख दिया, मानो वे शत्रु के हाथ मे वन्दी नहीं वरन् किसी देवालय में सुरक्षित रक्खी हुई देवियाँ हैं। उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं होने दिया। दारा की स्त्री उस समय की सुन्दरियों मं सबसे अधिक सुन्दर समझी जाती थी। दारा भी

.खूब लम्बा और सुन्दर जवान था। दोनों लड़कियाँ भी अपने माता-पिता के अनुरूप ही रूपवती थीं। परन्तु सिकन्दर ने अपने शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा अपने मन को जीतना अधिक राजोचित कर्म समझ उनमे से किसी से भी घनिष्टता प्राप्त करने का यत्न नहीं किया। उसने ईरान की दूसरी वन्दी स्त्रियों पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया, वरन् मजाक से यह कह कर परे हटा दिया कि ईरानी स्त्रियाँ आँख मे काँटे की तरह चुभती हैं। जब उसने सुना कि यूनान के दो सिपाहियों ने कुछ पर-देशियों की पत्नियों के साथ व्यभिचार किया है तो उसने उनके अफसर को लिखा कि उनकी पूरी पूरी जाँच की जाय, और यदि वे अपराधी सिद्ध हों तो, मनुष्यों को कष्ट देनेवाले हिंसक जन्तु समझकर, उन्हे प्राणदण्ड दिया जाय। उसी पत्र मे उसने लिखा कि मैंने दारा की स्त्री को देखा तक नहीं और न देखने की इच्छा ही की है; इतना ही नहीं, मैं किसी को अपने सामने उसके सौन्दर्य की प्रशंसा तक नहीं करने देता।

सिकन्दर खान-पान मे वहुत मिताचारी था। उसमे किसी प्रकार का दुर्व्यसन न था। इसी लिए वह इतने थोड़े समय मे ऐसे वड़े वड़े काम कर सका। वह बिना भूख के कभी नहीं खाता था। जो मनुष्य उसके साथ खाने वैठते थे उन सवको एकसा भोजन देने का ध्यान रखता था। कोई विशेष स्वादिष्ट भोजन वनता तो उसे सवको वाँट देता था, यहाँ तक कि अपने लिए भी नही रखता था।

दारा ने सिकन्दर को लिखा कि मुझसे रुपया ले लीजिए और मेरी बन्दी स्त्रियों को मुक्त कर दीजिए, और मित्रता तथा सन्धि के बदले मेरी एक बेटी से विवाह करके जेहूँ नदी के उस पार के सारे देश ले लीजिए। ये शर्तें जब सिकन्दर ने अपने मित्रों को बताई तो पारमीनियो नाम का मित्र बोला—"यदि मैं सिकन्दर होता तो तुरन्त इनको मान लेता।" इस पर सिकन्दर बोला—"मैं भी ऐसा ही करता यदि मै पारमीनियो होता।" फलतः उसने दारा को लिख भेजा कि यदि आप अधीनता स्वीकार कर लेंगे तो मैं आपके साथ बड़ी दया का व्यवहार करूँगा, अन्यथा मै आपका पीछा करूँगा। परन्तु इस बीच मे दारा की स्त्री का प्रसव से देहान्त हो गया। सिकन्दर ने उसका अन्त्येष्टि-संस्कार बडी ही शान और धूम-धाम के साथ किया।

दारा लड़ाई मे घोर रूप से आहत होकर भाग गया था। उसने जब सिकन्दर का ऐसा सद्व्यवहार सुना तो उसने देवताओं से प्रार्थना करते हुए कहा—हे देवगण, कृपा करके ईरान के गिरते हुए वैभव और सत्ता को फिर से उठाइए ताकि सिकन्दर ने मेरे प्रिय आत्मीयों के साथ जो कृपापूर्ण व्यवहार किया है उसका बदला चुका सकूँ। और यदि ईरान के विनाश की घड़ी आ ही पहुँची है तो मेरी प्राथेना है कि सिकन्दर के सिवा और कोई कैकाऊस (Cyrus) के सिंहासन पर न बैठे।

जेहूँ नदी के उस पार के समस्त एशिया को जीत लेने के पश्चात् सिकन्दर ने दारा का पीछा किया। उसकी सेना दो

दलों मे बँट गई। खेल खेल में एक दल के सेनापति ने अपना नाम दारा रख लिया और दूसरे दलवाले ने सिकन्दर। पहले तो वे एक दूसरे पर मिट्टी के ढेले फेक फेंककर लड़ने लगे, फिर घूँसों की नौबत आ गई, तत्पश्चात् वे पत्थरों और मुद्गरों से सचमुच ही लड़ने लगे। समाचार पाकर सिकन्दर ने लडाई तो बन्द करा दी, परन्तु दोनों दलों के कप्तानों को आपस में कुश्ती लड़ने को कहा। जो सिकन्दर बना हुआ था उसे उसने अपने हाथ से हथियार पहनाये। सारी सेना यह दङ्गल देखने लगी, क्योंकि वे इससे अपनी भावी विजय का शकुन लेना चाहते थे। देर तक डटकर मल्ल-युद्ध करने के पश्चात् जो सैनिक सिकन्दर बना हुआ था वह जीत गया। सिकन्दर ने उसे बारह गॉव इनाम मे दिये और फारसी परिधान पहनने की भी अनुमति दे दी।

सिकन्दर दारा को ढूँढ़ता फिर रहा था। अन्त को वह वहीं जा पहुँचा जहाँ दारा था। रात का समय था। सिकन्दर के सेनापति ने सलाह दी कि रात का लाभ उठाकर अँधेरे मे ही दारा पर धावा बोल देना चाहिए। परन्तु सिकन्दर ने इससे इनकार करते हुए कहा कि मै विजय को चोरी द्वारा प्राप्त नही करना चाहता, मैं सामने युद्ध करके दारा को हराऊँगा। सबेरे घोर युद्ध होने को था। उससे पहली रात सिकन्दर को निश्चिन्त होकर गहरी नींद मे सोते देख उसके सेनापति ने कहा कि, आप तो ऐसे सो रहे हैं जैसे विजय प्राप्त कर चुके हों। सिकन्दर ने मुस्कराते हुए कहा,—"क्या हमारे विजयी होने में

कोई सन्देह है ? अब हम दारा को ऊजड़ और विस्तृत प्रदेश में ढूँढ़ते फिरने के कष्ट से बच गये हैं।"

दारा और सिकन्दर की सेनाओं का घमासान युद्ध हुआ। सिपाही गाजर-मूली की भाँति कटकर गिरने लगे। कुछ देर बाद ईरानियों ने पीछे हटना शुरू कर दिया। सिकन्दर ने बड़े जोर से उनका पीछा किया। वे भागकर वहाँ एकत्र हो गये जहाँ दारा स्वयं युद्ध कर रहा था। सिकन्दर ने दूर से देखा कि दारा एक ऊँचे रथ पर सवार है। चारों ओर उसके अंग-रक्षक योद्धा जुटे हैं और शत्रु के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु सिकन्दर का आक्रमण इतना भीषण था कि वे सब छिन्न भिन्न हो गये। जिन थोड़े से सिपाहियों ने सामना किया उनकी लाशों के ढेर लग गये। दारा ने देखा कि अब सर्वनाश आ पहुँचा है। लाशों में पहियों के फँस जाने और रक्त के जम जाने से उसके लिए रथ को मोडना या छोडना कठिन हो गया। लाशों का इतना भारी ढेर था कि रथ के घोड़े उनमे दिखाई न देते थे। ऐसी दशा देख दारा रथ को छोड़ एक घोड़ी पर सवार होकर भाग गया। इस लड़ाई के साथ ईरानी साम्राज्य की समाप्ति हो गई।

अब सिकन्दर अबाध गति से बढ़ने लगा। एक दिन सैनिक लोग रङ्गरेलियाँ मना रहे थे। शराब का दौर चल रहा था। टोल्मी की गृहस्वामिनी, थाइस, ने कुछ तो हँसी से और कुछ सिकन्दर की प्रशंसा के भाव से कह दिया कि मैंने

सेना के साथ साथ एशिया मे घूमने का जो कष्ट उठाया है उसका कुछ बदला तो इस विजय के रूप में मिल गया, परन्तु मेरा मन तब प्रसन्न होगा जब मैं राजा की आँखों के सामने, अपने हाथ से, उस कैखुसरू (xerxes) के राजप्रासाद को आग लगाऊँगी जिसने हमारे एथंस नगर को जलाकर राख कर दिया था, ताकि आनेवाली सन्तानों को इतिहास बता सके कि सिकन्दर के साथ रहनेवाली स्त्रियों ने ईरानियों से यूनान के कष्टों का ऐसा कडा बदला लिया कि जैसा कोई प्रसिद्ध सेनापति भी न ले सका। इस प्रस्ताव को सुनकर सभी प्रसन्न हुए। सिकन्दर ने स्वयं मशाल लेकर राज-भवन मे आग लगाई। परन्तु बाद को उसे इस भूल के लिए पश्चात्ताप हुआ और उसने उसे बुझवा दिया।

सिकन्दर बड़ा दानी था। ज्यों ज्यों उसकी सम्पत्ति बढ़ती गई त्यों त्यों उसकी दानशीलता भी बढ़ती गई। एक दिन अरिस्टन नाम का एक कप्तान एक शत्रु को मारकर उसका सिर काट लाया। सिकन्दर को वह सिर दिखाते हुए, उसने कहा—"इस देश में ऐसी प्रथा है कि ऐसे उपहार के बदले मे सोने का प्याला दिया जाता है।" इस पर सिकन्दर ने मुस्कराकर कहा—"वह तो खाली प्याला देते होंगे, मैं आपको मदिरा से भरकर देता हूँ।"

एक समय की बात है, एक सैनिक राजकीय कोप से लदा हुआ खच्चर लिये जा रहा था। भार से खच्चर बहुत थक गया

था। सैनिक ने खच्चर पर से बोझ उतारकर अपनी पीठ पर रख लिया और उसे लिये चलने लगा। सिकन्दर ने उसे इस प्रकार बोझ के नीचे दबा हुआ देख पूछा कि क्या बात है? सैनिक थकान के मारे बोझ को नीचे रख देने को था। जब उसने सारी बात बताई तो सिकन्दर बोला—"अब अचेत मत हो, रास्ता समाप्त करो, और जो कुछ तुम्हारे पास है, अपने लिए अपने तम्बू में ले जाओ।"

सिकन्दर की माता बड़ी तुनुक मिजाज थी। वह उसके लिए सदा उपहार भेजा करता था, परन्तु राज्य या युद्ध की बातों में उसे हस्तक्षेप नहीं करने देता था। जब वह उस पर बिगड़ती तो वह उसके क्रोध को शान्ति के साथ सहन करता था। एक बार उसके मित्र एण्टिपेटर ने उसकी माता के विरुद्ध बहुत सी शिकायतें चिट्ठी मे लिख भेजीं। चिट्ठी को पढ़कर सिकन्दर ने कहा—"एण्टिपेटर नहीं जानता कि माता का एक आँसू इन जैसी सहस्रों चिट्ठियों को मिटा देता है।"

सिकन्दर सैनिकों को विलासिता मे पड़ने से सदा रोका करता था। वह उनसे कहा करता कि क्या तुमने लडाई में अनुभव से यह नहीं सीखा कि जो लोग परिश्रम करते हैं उनको उनकी अपेक्षा, जिनके लिए वे परिश्रम करते हैं, अधिक मीठी और गहरी नींद आती है? क्या अपने और ईरानवालों के रहन-सहन के ढंग का मिलान करके तुम्हे पता नहीं लगा कि विलास-प्रिय बनना एक नीच और दासता की अवस्था है और कष्ट

उठाना और श्रम करना कुलीनता एव शान की बात है ? क्या तुम्हें अभी यह सीखना शेष है कि हमारी विजयों का अन्त और संपूर्णता उन लोगों की दुर्बलताओं और दुर्गुणों से वचे रहना है जिनको हमने पराजित किया है ? सैनिकों के सामने उदाहरण उपस्थित करने के लिए वह आप बडा श्रम किया करता था।

सिकन्दर अपने साथियो और मित्रों के सुख-दुख मे भली भाँति सम्मिलित होता था। एक मित्र को रीछ ने काट लिया। इसकी ख़बर पाकर उसने उसे लिखा कि आपने मेरे प्रति बडी निर्दयता दिखाई है जो औरों को तो इस दुर्घटना की सूचना भेजी है पर मुझे पता तक नहीं दिया। अब जब मुझे पता लग चुका है तो लिखिए कि आपका क्या हाल है, संकट के समय आपका कोई साथी आपको छोड़कर तो नहीं भाग गया था, ताकि मैं उसे दण्ड दूँ।

एक बार सिकन्दर का एक मित्र बीमार पडा। जब वह स्वस्थ हुआ तो सिकन्दर ने उसके चिकित्सक को, उसे चंगा करने के लिए, धन्यवाद का पत्र लिखा।

हम ऊपर कह चुके हैं कि दारा लडाई में मारा न जाकर जीता भाग गया था। सिकन्दर को उसका पीछा करने में वडी कठिनाई हुई। पानी के अभाव से उसके वहुत से सिपाही इतने दुखी हुए कि उन्होंने आगे जाने से इनकार कर दिया। जिस समय वे इस कष्ट मे थे, मेसेडोनिया के कुछ सैनिक किसी

नदी से पानी की मशकें भर कर खच्चरों पर ले आये। दोपहर का समय था। वे वहीं पहुँच गये जहाँ सिकन्दर था। उस समय सिकन्दर का गला प्यास के मारे बन्द हो रहा था। उन्होंने खोद में पानी भर कर उसे पीने को दिया। उसने पूछा—"आप किसके लिए पानी ले जा रहे हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"अपने बच्चों के लिए।" साथ ही उन्होंने कहा कि यदि आप बच जायँ तो बच्चों की हमें कुछ परवा नहीं। हम उस हानि की पूर्ति कर लेंगे, चाहे वे सब के सब नष्ट हो जायँ। तब उसने खोद हाथ में लेकर चारों ओर देखा। उसके इर्द गिर्द खड़े लोग गर्दनें बढ़ा बढ़ाकर तरसते हुए पानी को देख रहे थे। उसने पानी की एक भी बूँद चखे बिना धन्यवाद-पूर्वक खोद को पुनः लौटा दिया। उसने कहा कि यदि मैं अकेला पिऊँगा, तो इन सबका दिल टूट जायगा। यह सुन सैनिकों का उत्साह बढ़ गया। जो लोग यूनान को लौट जाने का आग्रह कर रहे थे वे भी आगे जाने के लिए तैयार हो गये। आगे बढ़ने पर उन्हें तीरों से घायल दारा, मरणासन्न दशा मे, एक रथ मे लेटा हुआ मिला। उसने सिपाहियों से पानी माँगा। थोड़ा सा ठडा पानी पी चुकने के बाद उसने कहा—"मेरे दुर्भाग्य की यह पराकाष्ठा है कि मैं उपकार पा रहा हूँ परन्तु उन उपकारों का बदला नहीं दे सका। मुझे आशा है कि सिकन्दर ने मेरी माता, मेरी पत्नी और मेरे बच्चों के प्रति जो दया का व्यवहार किया है उसका बदला देवता उसे देंगे, परन्तु मेरे प्रति आपकी

सदयता के लिए निस्सन्देह सिकन्दर आपको धन्यवाद देगा। इसलिए मैं उसका उपकार मानता हुआ अपना यह दायाँ हाथ उसे देता हूँ।" इतना कहते ही कहते उसके प्राण निकल गये। जब सिकन्दर वहाँ पहुँचा तो उसने बहुत शोक प्रकट किया और अपना चोग़ा उतार कर उसकी मृत देह को ढँक दिया। फिर दारा के शव को राजसी ठाठ-वाट और सम्मान के साथ उसकी माँ के पास भेज दिया गया। उसके भाई एकसेथरस (Exathres) को उसने अपना मित्र वना लिया।

सिकन्दर ने पार्थिया देश मे प्रवेश किया और उन लोगों का पहनावा पहन लिया। इससे उनको सभ्य बनाने का काम बहुत सुगम हो गया। यहाँ उसने रोकसना नाम की एक सुन्दरी से विवाह किया। इससे वहाँ के लोग बहुत प्रसन्न हो गये कि सिकन्दर जैसे मिताचारी ने हमारे देश की एक युवती को अपनी महारानी बनाया है।

ईरान के बाद सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। उसके सिपाहियों के पास लूट की सामग्री इतनी अधिक इकट्ठी हो गई थी कि इससे उनके कूच करने में बड़ी कठिनाई पडती थी। यह देख, सवेरे जब माल-असबाब से लदे छकड़े चलने को तैयार खड़े थे, सिकन्दर ने सब से पहले अपने और अपने मित्रों के सामान में आग लगा दी, और फिर शेष सैनिकों के छकड़ों में आग लगा देने की आज्ञा दी। इस पर सिपाहियों ने चिल्लाते और शोर करते हुए जल्दी में केवल उतना

ही सामान बचा लिया जितना उनके लिए नितान्त आवश्यक था। फालतू और अनावश्यक वस्तुएँ जलकर राख हो गईं। इससे सिकन्दर का उत्साह दुगुना हो गया। जिन सैनिकों से किसी प्रकार का अपराध बन पड़ा था, अब उसने उनको कठोर दण्ड दिया। मीनाण्डर नाम के अपने एक मित्र को उसने एक किले में तैनात किया था, परन्तु वह उसे छोड़कर भाग गया था। सिकन्दर ने इस अपराध के लिए उसे प्राण-दण्ड दिया।

नायसा नाम के नगर पर सिकन्दर ने धावा किया। परन्तु वहाँ पहुँचने के लिए रास्ते मे एक गहरी नदी को पार करना पड़ता था। इसलिए सिपाही वहुत मन्थर गति से और अनिच्छापूर्वक चल रहे थे। यह देख सिकन्दर सब से आगे हो गया और नदी के तट पर खड़ा होकर कहने लगा—"मैं कितना अभागा मनुष्य हूँ कि मैंने तैरना नहीं सीखा !" तब लोगों के मना करने पर भी वह नदी मे कूद पड़ा और पार जा पहुँचा। यहाँ धावा समाप्त हो चुकने के बाद अनेक नगरों के राजदूत अधीनता स्वीकार करने और सन्धि करने के लिए उसके पास आये। वे लोग उसे अब तक उसी प्रकार कवच पहने और बिना किसी सेवक के अकेला खड़ा देख आश्चर्य-मग्न हुए। जब कोई व्यक्ति उसके बैठने के लिए गलीचा उठा लाया तो उसने उनमे से सब से वड़े, अकूफिस, को उस पर बैठाया। सिकन्दर का ऐसा शिष्टाचार और उदारता देखकर वृद्ध चकित रह गया। उसने सिकन्दर से पूछा—"आपकी मित्रता प्राप्त करने के लिए मेरे देश-

बन्धुओं को क्या करना चाहिए ?" सिकन्दर ने उत्तर दिया—"मैं चाहता हूँ कि वे आपको अपना शासक बनावें और अपने में से सब से अधिक योग्य सौ मनुष्यो को शरीर-बन्धक के रूप में मेरे निकट रहने के लिए भेज दे।" अकूफिस हँस पड़ा और बोला—"यदि मैं अपनी प्रजा के सबसे अच्छे सौ मनुष्यों के बजाय सब से बुरे सौ मनुष्य आपके पास भेजूँ तो मेरे लिए शासन करना अधिक सुगम होगा।"

भारत मे तक्षशिला के राजा का राज्य मिस्र देश के बराबर लम्बा-चौड़ा समझा जाता था। उसमें अच्छी अच्छी गोचर भूमियाँ थीं और सुन्दर फल उत्पन्न होते थे। राजा स्वयं बड़ा बुद्धिमान् प्रसिद्ध था। सिकन्दर से पहली भेंट के समय वह बोला—"यदि इस देश मे आने का आपका उद्देश्य हमसे हमारा आवश्यक अन्न और जल छीनना नहीं, क्योंकि यही दो ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके लिए बुद्धिमानों को विवश होकर युद्ध करना पड़ता है, तो फिर हमे एक दूसरे से लड़ने से क्या लाभ ? बाकी रही दूसरी धन-सम्पत्ति की बात, सो यदि वह मेरे पास आपसे अधिक है तो मैं उसे आपके साथ बाँट लेने को तैयार हूँ। परन्तु यदि भाग्य ने आपको अधिक दे रक्खी है, तो आपका उपकृत होने में मुझे कोई आपत्ति नहीं।" इस बातचीत से सिकन्दर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने राजा को आलिङ्गन करते हुए उत्तर दिया—"क्या आप समझते हैं कि इस भेंट मे आपके कृपापूर्ण वचन तथा शिष्टतापूर्ण व्यवहार युद्ध के बिना ही

आपको बचा देंगे ? नहीं, आप ऐसे नहीं छूटेंगे। मैं आपके साथ झगड़ा और लड़ाई वहीं तक करूँगा कि आप कितने भी उपकारी हों, आपका हाथ मुझसे ऊँचा न रहने पायगा।" जब राजा ने उसे कुछ उपहार भेजे तो उसने उनसे भी बहुमूल्य उपहार देकर उन्हे लौटा दिया और अपनी वदान्यता को पूर्ण करने के लिए उसे एक सहस्र मुद्राएँ नक़द दीं। इससे सिकन्दर के तो कुछ सैनिक अप्रसन्न हुए परन्तु बहुत से भारतीयों के हृदयों को उसने जीत लिया।

इसके बाद जेहलम नदी के तट पर सिकन्दर का राजा पोरस से युद्ध हुआ। पोरस बड़ा लम्बा-चौड़ा जवान था। उसका क़द चार हाथ और एक बालिश्त था। हाथी पर बैठा हुआ वह ऐसा ही दीखता था जैसे कोई जवान घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ दीखता है। उसका हाथी भी बड़ा चतुर और बलवान् था। वह युद्ध में राजा की बहुत अच्छी तरह रक्षा करता था। उसने देखा कि राजा तीरों से घायल होकर निढाल हो रहा है और अपने को सँभाल नहीं सकता तो वह घुटने के बल बैठकर अपनी सूँड़ से उसके घावों में से तीर निकालने लगा। जब पोरस पकड़ा गया तो सिकन्दर ने उससे पूछा कि आप मुझसे कैसे व्यवहार की आशा करते हैं ? उसने उत्तर दिया, "जैसे एक राजा को दूसरे राजा से करना चाहिए।" जब यही प्रश्न उससे दुबारा किया गया तो उसने कहा—"मेरे पहले उत्तर मे सब कुछ आ जाता है।" इस पर सिकन्दर ने प्रसन्न होकर न

केवल उसे उसके देश पर ही शासन करने दिया वरन् इसके अतिरिक्त उसे अपने पास से कुछ और प्रदेश भी प्रदान किया।

पोरस के साथ युद्ध के कुछ देर वाद सिकन्दर का प्यारा घोड़ा बूसफेलूस, बुढ़ापे और थकान के कारण, मर गया। सिकन्दर को उसकी मृत्यु से उतना ही दुःख हुआ जितना किसी पुराने साथी की मृत्यु से होता है। उसकी स्मृति में उसने जेहलम नदी के किनारे पर बूसफालिया नाम का एक नगर बसाया। सुना जाता है कि उसने अपने प्यारे कुत्ते पेरीटस के नाम पर भी एक नगर बसाया था।

भारत में सिकन्दर के सैनिकों को वड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इनसे घबरा कर उन्होंने गङ्गा के पार जाने से इनकार कर दिया। उनके इस प्रकार इनकार करने से सिकन्दर को इतना रञ्ज हुआ कि वह अपने को तंबू के भीतर वन्द करके भूमि पर लेट गया और कहने लगा कि यदि तुम गङ्गा को पार नहीं करोगे तो मैं तुम्हारे आज तक के कष्टों के लिए कुछ भी उपकार नहीं मानूँगा और वापस लौटने का अर्थ इस समय अपने को स्पष्ट रूप से पराजित स्वीकार करना होगा। परन्तु सैनिकों की अनुनय-विनय पर वाद को उसने लौटना स्वीकार कर लिया।

सिकन्दर ने भारत में मल्ली लोगों के एक नगर पर आक्रमण किया। वहाँ वह वहुत बुरी तरह से घायल हो गया। यदि उसे रण-भूमि से उठाकर न ले जाते तो उस दिन वहीं उसका अन्त हो जाता।

इस यात्रा मे उसने दस भारतीय तत्त्वज्ञानियों को बन्दी बनाकर साथ ले लिया, क्योंकि उन्हीं के आन्दोलन से राजा सब्बास ने सिकन्दर के विरुद्ध सिर उठाया था। ये तत्त्वज्ञानी दिगम्बर तार्किक कहलाते थे। कोई उनसे कैसा भी प्रश्न पूछे, वे तत्काल और थोड़े मे उसका उत्तर दे देते थे। सिकन्दर ने उनकी परीक्षा करनी चाही। उनमे जो सब से वृद्ध था उसको उसने पञ्च वनाया और आज्ञा दी कि जिसका उत्तर उपयुक्त नहीं होगा उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा। पहले तार्किक से उसने प्रश्न किया—"जो मर चुके हैं उनकी संख्या आप अधिक समझते हैं या उनकी जो जीते हैं?" उसने उत्तर दिया—"जीतों की, क्योंकि जो मर चुके है उनका तो कोई अस्तित्व ही नहीं।" दूसरे से पूछा गया—"सबसे बड़े जन्तु पृथ्वी पैदा करती है या समुद्र?" उसने उत्तर दिया—"पृथ्वी, क्योंकि समुद्र उसका ही एक अंश है।" तीसरे से उसका प्रश्न था—"सब से कपटी जन्तु कौन है?" उसने उत्तर दिया—"वह जिसे मनुष्य अभी तक नहीं पा सके।" चौथे से उसने पूछा—"वह युक्ति बताइए जिसका प्रयोग आपने सब्बास को मेरे विरुद्ध खड़ा करने के लिए किया था।" उसने उत्तर दिया—"और कुछ नहीं, सिवा इसके कि उसे कीर्ति के साथ जीना और कीर्ति के साथ ही मरना चाहिए।" पाँचवें से उसने पूछा—"उम्र मे दिन बड़ा है या रात?" उसने उत्तर दिया—"दिन, कम से कम एक दिन उम्र मे अधिक है।" परन्तु यह देख कर कि इस उत्तर से सिकन्दर

को सन्तोष नहीं हुआ, उसने फिर कहा—"यदि अनोखे प्रश्नों के उत्तर भी अनोखे ही मिले तो आपको आश्चर्य नहीं करना चाहिए।" तब सिकन्दर ने अगले से पूछा—"बहुत अधिक प्यारा बनने के लिए मनुष्य को क्या करना चाहिए?" उसने उत्तर दिया—"उसे बहुत बलवान् होना चाहिए, परन्तु साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि लोग उससे बहुत अधिक भयभीत न रहने लगें।" सातवें से उसने प्रश्न किया—"मनुष्य देवता कैसे बन सकता है?" उसने उत्तर दिया—"वह काम करने से जिसका करना मनुष्यों के लिए संभव न हो।" आठवे ने कहा—"जीवन मृत्यु से प्रबल है, क्योंकि यह इतने क्लेशों को सहन करता है।" तब उसने अन्तिम से पूछा—"मनुष्य के लिए कब तक जीते रहना आप उचित समझते हैं?" उसने उत्तर दिया—"उस समय तक जब उसे जीवन की अपेक्षा मृत्यु अधिक वाञ्छनीय प्रतीत होने लगे।" तब सिकन्दर ने जिसको निर्णाता बनाया था उसे अपना निर्णय देने का आदेश किया। उसने कहा—"मैं जो कुछ निश्चय कर पाया हूँ वह यह है कि उन सब ने एक दूसरे से बढ़कर बुरे उत्तर दिये हैं।" तब राजा ने कहा—"तो ऐसा निर्णय देने के लिए सबसे पहले आपको ही प्राण-दण्ड दिया जायगा।" नग्न तत्त्वज्ञानी ने उत्तर दिया—"राजन्, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि आपने यह झूठ-मूठ नहीं कहा था कि जिसका उत्तर सबसे बुरा होगा उसे ही सबसे पहले प्राण-दण्ड दिया जायगा।" समाप्ति पर सिकन्दर ने उन सबको उपहार देकर बिदा कर दिया।

इन दिगम्बर तार्किकों के अतिरिक्त और भी कई प्रसिद्ध तत्त्व-ज्ञानी थे जो सिकन्दर से मिलने नहीं आये थे। सिकन्दर ने डायोजनीस के शिष्य ओनीसिक्राइटस को अपना प्रतिनिधि बनाकर उनको बुलाने के लिए भेजा। कहते हैं, कालानूस (Calanus) नामक तत्त्वज्ञानी ने बड़े घमण्ड और कठोरता के साथ उसे आज्ञा दी कि कपड़े उतारकर नङ्गे हो जाओ तब मेरी बातों को सुनो, अन्यथा मैं तुमसे एक शब्द तक न कहूँगा, चाहे तुम स्वयं सूर्य भगवान् के पास से ही क्यों न आये हो। परन्तु डण्डमिस (Dandamis) ने उसके साथ अधिक शिष्टता का व्यव-हार किया। उसने सुकरात, पाइथेगोरस और डायोजनीस के उप-देशों को सुनकर कहा कि मैं समझता हूँ, वे बड़े योग्य पुरुष थे। उनकी सबसे भारी भूल इतनी ही थी कि वे अपने देश के राज-नियमों और रीति-रिवाजों का बहुत अधिक सम्मान करते थे। तक्षशिला के राजा (Taxiles) की प्रेरणा से कालानूस ने सिकन्दर के निकट जाना स्वीकार कर लिया। उसका असली नाम स्फाइनस (Sphines) था, परन्तु उसका स्वभाव काले (Cale) शब्द से लोगों का अभिवादन करने का था, जो भारतीय भाषा में एक प्रकार का प्रणाम है। इसलिए यूनानी उसे कालानूस कहने लगे। उसने उदाहरण देकर सिकन्दर को राजनीति का एक बहुत अच्छा उपदेश दिया। उसने एक सूखी और सिकुड़ी हुई खाल भूमि पर बिछा दी। फिर वह उसके किनारों पर पाँव रखकर चलने लगा। खाल जब एक जगह पर पैर के

भार से दबती तो दूसरी जगह पर उठ जाती, चाहे वह इर्द गिर्द कहीं भी पैर रखता। तब उसने खाल के मध्य भाग पर पैर रक्खा। इससे खाल के सभी भाग समतल होकर भूमि पर बिछे रहे। इस उपमा का अर्थ यह था कि सिकन्दर को सबसे अधिक समय तक अपने साम्राज्य के मध्यस्थल मे रहना चाहिए—उसकी सीमाओं पर अधिक समय नहीं बिताना चाहिए।

भारत में सिकन्दर की सेना की बड़ी हानि हुई। एक लाख बीस हज़ार पैदलों और पन्द्रह हजार सवारों मे से वह मुश्किल से एक चौथाई अंश लेकर वापस गया। ईरान में पहुँचकर उसने, वहाँ के राजाओं की प्राचीन रीति के अनुसार, स्त्रियों मे रुपया बाँटा। यहाँ कालानूस को पेट का कोई रोग हो गया। उसने इच्छा प्रकट की कि मेरे लिए लकड़ियों की चिता बनवा दी जाय। वह घोड़े पर सवार होकर वहाँ आया। वहाँ पहुँचकर उसने कुछ मन्त्र पढ़े, अपने ऊपर जल के छींटे डाले और थोड़े से केश काटकर आग मे डाले। फिर चारों ओर खडे मेसेडोनियावालों से आलिङ्गन कर विदा ली और कहा कि आप आज का दिन अपने राजा की संगति मे बड़े आनन्द से बितावें, निस्सन्देह मैं कुछ ही काल उपरान्त आपके राजा से फिर बेबीलोन मे मिलूँगा। इतना कहकर वह चिता पर लेट गया और मुँह ढाँप लिया। जब अग्नि की ज्वालाओं ने उसे घेर लिया। तब भी वह हिला-डुला तक नहीं, मानो फूलों की सेज पर पाँव पसारे सुख से सो रहा हो। बहुत समय बाद यही बात, एक

दूसरे भारतीय ने भी की थी, जो सिकन्दर के साथ एथन्स को गया था। वहाँ अब तक "भारतीय का स्मारक" आपको मिलेगा।

सूसा मे सिकन्दर ने दारा की पुत्री स्टेटिरा (Statira) से विवाह किया तथा योग्य मेसेडोनियन लोगों के साथ और भी अनेक कुलीन ईरानी स्त्रियों के विवाह कर दिये।

मीडिया देश के अन्तर्गत एकबटाना (Ecbatana) मे पहुँच कर सिकन्दर ख़ूब हर्षोत्सव मनाने लगा। परन्तु उसके मित्र हफीसशन के बीमार पड़ जाने से रङ्ग मे भङ्ग पड़ गया। ग्लौकस वैद्य उसकी चिकित्सा कर रहा था। एक दिन वह उसे अकेला छोड़कर नाटक देखने चला गया। पीछे से रोगी ने अपथ्य किया। उसने एक कुक्कुट खाकर बहुत सी मदिरा पी ली। इससे वह अधिक बीमार हो गया और जल्दी ही मर गया। सिकन्दर को इससे इतना शोक हुआ कि उसने अपने घोड़ों और घोड़ियों के अयाल तथा पूँछे कटवा डालीं और वैद्य को सूली पर चढ़ा दिया। तब अपने शोक को हलका करने के लिए वह जन्तुओं और मनुष्यों के शिकार के लिए निकला। उसने कोसियन लोगों की सारी की सारी जाति का वध कर डाला।

अपने अन्तिम दिनों में सिकन्दर अति-प्राकृतिक प्रभावों से बहुत डरने लगा था। यदि कोई छोटी सी भी असामान्य बात हो जाती तो वह इतना घबरा जाता कि उसे कोई शकुन या असाधारण घटना समझने लगता। उसकी राजसभा भवि-

भ्यद्वक्ताओं और ओझा लोगों से भरी रहती थी। उन लोगों का एकमात्र काम बलि देना, शुद्धि करना और भविष्य की बातें बताना होता था। जहाँ नास्तिकता और भगवान् से पराङ्मुख होना एक भारी विपत्ति है वहाँ मूढविश्वास भी उससे कुछ कम क्लेश नहीं। वह पानी की तरह नीचे की ओर निरन्तर बहा करता है और मनुष्य के मन को दासोचित त्रासों और मूर्खताओं से भर देता है। यही दशा इस समय सिकन्दर की थी। उसने हफीसशन के संबंध में देवता से कुछ प्रश्न पूछ भेजे। उनका उत्तर आने पर उसने अपने शोक को दूर कर दिया और खूब रङ्गरेलियाँ मनाने लगा। एक दिन वह बहुत अधिक मदिरा पी गया। इससे उसे ज्वर आ गया। ज्वर के आवेश में, प्यास से व्याकुल होकर, उसने फिर मदिरा पान किया। इससे उसे चित्तविभ्रम हो गया और उसकी मृत्यु हो गई।

मेरी स्काटलेंड की रानी

स्काटलेंड की रानी मेरी

सन् १५४२—१५८७ तक

[पाइरी डी बोर्डल सियुर डी ब्रण्टोम (Pierre De Bourdelle Sieur De Brontome, सन् १५४० से १६१४ तक) के फ्रेञ्च लेख के आधार पर]

स्काट लोगों की विख्यात महारानी मेरी के चरित-लेखक के पास दो ऐसे विषय हैं जिन पर वह सफलतापूर्वक लिख सकता है—एक तो महारानी का जीवन-वृत्तान्त और दूसरा उसकी मृत्यु।

मेरी के पिता राजा जेम्ज़ और माता फ़्रांस की क्लौड डी लोरैन थी। दोनों एक दूसरे को पाकर बड़े प्रसन्न थे। पति की मृत्यु के पश्चात् क्लौड स्काटलेंड का शासन सफलतापूर्वक करती रही। यद्यपि इनके विवाह की अवधि थोड़ी ही रही, फिर भी क्लौड के एक अतीव सुन्दर बालिका उत्पन्न हुई। यही पीछे से महारानी हुई। इसके जन्म के थोड़े समय बाद ही अँगरेज़ों ने स्काटलेंड पर चढ़ाई कर दी। शत्रु से बचने के लिए विधवा रानी को जगह जगह मारे मारे फिरना पड़ा। उसने अपनी पुत्री को, रक्षा के विचार से, फ़्रांस भेज दिया।

अब राजकुमारी चन्द्रमा के समान दिन पर दिन बढ़ने लगी। पन्द्रह वर्ष की आयु मे उसका रूप मध्याह्न के सूर्य के समान चमकता था। वरन् उसकी रूपराशि के सामने सूर्य को भी ग्रहण लगा जान पडता था।

इस बालिका की बुद्धि उसके शरीर से भी अधिक चमकदार थी। तेरह चौदह वषे की अवस्था मे उसने फ़ास के राजा हेनरी, महारानी और सारी राजसभा के सामने अपना रचा हुआ लैटिन मे भाषण दिया। इस सुन्दर और विदुषी रानी को धारा-प्रवाह लैटिन बोलते देख सभी चकित रह गये।

उसका बात करने का ढङ्ग बड़ा ही मनोमोहक था। उसमे विनय, श्रेष्ठत्व और विचारशीलता सब पाये जाते थे। अँगरेज़ी यद्यपि फ़्रेञ्च के सामने एक कर्कश सी भाषा है, परन्तु वह इसे ऐसी लटक के साथ बोलती थी कि वह बहुत ही मधुर जान पड़ती थी।

मेरी का फ़्रांस पर बहुत प्यार हो गया, यहाँ तक कि उसने राजा हेनरी से कहकर उसके राजकुमार डौफिन के साथ विवाह कर लिया। हेनरी की मृत्यु के बाद वे दोनों फ़्रांस के राजा और रानी बन गये। दोनों का वैवाहिक जीवन बड़ा ही सुखमय था। शायद वह अन्त तक ऐसा ही बना रहता, यदि नवयुवक राजा का देहान्त न हो जाता। इस प्रकार केवल चार वर्ष तक गार्हस्थ्य जीवन का आनन्द लेने के बाद वह भरी जवानी में विधवा हो गई।

कुछ समय बाद स्काटलेंड से उसे बुलावे आने लगे, क्योंकि वह वहाँ की महारानी थी। परन्तु उसका मन वहाँ जाने को नहीं होता था। उसने इधर-उधर के बहाने करके बहुत देर तक टाला, परन्तु अन्त को उसे जाना ही पड़ा। वह रोती-बिलखती कैले नामक बन्दर से स्काटलेंड के लिए जहाज़ पर सवार हुई। जब रात के अँधेरे में फ़्रांस का सागर-तट दृष्टि से ओझल होने लगा तब वह फूट फूट कर रोती हुई बोली—"मेरे प्यारे फ़्रांस, तुझे दृष्टि से ओझल होते देख कर मुझे भारी दुःख हो रहा है। रात को मुझसे डाह है। वह नहीं चाहती कि मैं तुझे देखती रहूँ। इसी लिए उसने तुझे अपने काले परदे में छिपा लिया है। यह लबादा इसलिए डाला गया है कि मैं तेरे दर्शन से वंचित हो जाऊँ। मेरे प्यारे फ़्रांस, तुझे मेरा अन्तिम नमस्कार है। मै तुझे फिर न देख सकूँगी।"

इस समय मेरी कामना कर रही थी कि अँगरेज़ों के जहाज़ इधर आ निकलें जिससे मुझे फ़्रांस को लौट जाना पड़े। रास्ते की एक घटना उल्लेखनीय है। जिस समय रात्रि ने अपना काला परदा संसार पर फैला दिया, उस समय जहाज़ पर लालटैन जलाई जाने लगी। इस समय लार्ड चेस्टलार्ड ने कहा—"समुद्र में हमे मार्ग दिखाने के लिए इस लालटैन को जलाने की वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि हमारी इस महारानी की आँखें अपनी मनोहर ज्योति से ही इतनी तेजोमय हैं कि उनसे सारा समुद्र आलोकित हो सकता है वरन् वह जलने लग सकता है।"

कुछ लोगों का कहना है कि प्रारम्भिक संग्रामों में, नवरे का राजा उससे विवाह करना चाहता था। वह धार्मिक कारणों से अपनी भार्या को तलाक दे देना चाहता था। परन्तु महारानी मेरी ऐसा करने को राज़ी न थी। उसने दृढतापूर्वक कहा कि मेरे भी आत्मा है जिसे मै किसी भी सांसारिक महत्ता के लिए खोने को तैयार नहीं; मेरी आत्मा मुझे किसी ऐसे पुरुष से विवाह करने की अनुमति नहीं देती जिसने अपनी स्त्री को तलाक दे दिया है।

स्काटलेंड मे विद्रोह हो रहा था। उसे दबाने के लिए महारानी मेरी ने बड़ा यत्न किया। उसने उन लोगों की सेना संगठित की जो उसके बहुत स्वामिभक्त समझे जाते थे। वह घोडे पर सवार होकर स्वयं सैन्य-संचालन करने लगी। ऐसी कोमलाङ्गी रमणी को इस प्रकार का कठिन कार्य करते देख सबको आश्चर्य होता था। परन्तु विद्रोही प्रजा को दण्ड देकर अधीनता स्वीकार करने पर विवश करने और स्वाधीन शासक बनने के लिए मनुष्य क्या करने को उद्यत नहीं हो जाता ?

इस तिलोत्तमा सी सुन्दर और उदार महारानी को शत्रु के साथ युद्ध करने के लिए अपनी सेना को ले जाते देख बडा आनन्द प्राप्त होता था। परन्तु दुर्भाग्य ने मेरी का पीछा नहीं छोड़ा था। जिन सैनिकों को वह स्वामिभक्त समझे हुए थी, जिनको उसने ऐसे सुन्दर तथा वीरतापूर्ण शब्द कह कर अनुप्राणित करने की चेष्टा की थी कि जिनसे पत्थर और चट्टानें तक हिल

जातीं, उन्होंने शस्त्र रख दिये, युद्ध करने से इनकार कर दिया और शत्रु से जा मिले। वे सब षड्यंत्री थे। उन्होंने और उनके साथियों ने मिलकर राज्य पर अधिकार कर लेने और महारानी को इँगलेंड का बन्दी बना देने का कपट-प्रबंध सोचा।

अब महारानी मेरी को बन्दी बनाकर इँगलेंड भेज दिया गया। वहाँ वह एक दुर्ग में अठारह-बीस वर्ष तक कैद रही और अन्त को इँगलेंड की रानी इलेजबेथ की आज्ञा से उसकी बुरी तरह हत्या कर डाली गई। इलेजबेथ के मेरी से द्वेप के दो बड़े कारण थे। बड़ा कारण यह भी था कि मेरी इँगलेड की रानी से बहुत अधिक सुन्दर थी, जिससे वह मेरी से डाह करती थी। दूसरे इलेजबेथ ईसाई मत के प्राटस्टेट सम्प्रदाय की अनुयायी थी और मेरी रोमन कैथोलिक की। बहुत समय तक बन्दी रखने के बाद उसका सिर काट डालने की आज्ञा हुई।

महारानी मेरी की मृत्यु की कथा ऐसी नहीं जिसे सुनकर मनुष्य के हृदय मे अनुकम्पा का समुद्र न लहराने लगे। यह कथा उसकी दो सेविकाओं ने संसार को सुनाई है। इन दोनों को रानी ने मृत्यु-समय अपने पास रखने का प्रबन्ध किया था ताकि वे साची दे सके कि अन्तकाल में वह कितनी स्थिर-चित्त थी।

सन् १५८७ के फरवरी मास की १७वीं तारीख़ को अँगरेज़ों की रानी के प्रतिनिधि फादरिङ्गे के दुर्ग में पहुँचे। स्काटों की रानी उस समय वहीं कैद थी। दूसरे दिन सवेरे उसे उसका

सिर काट लेने की आज्ञा पढ़कर सुनाई गई। दण्डाज्ञा सुनकर महारानी ने कोई आश्चर्य प्रकट नहीं किया। उसने इस शुभ समाचार के लिए उनको धन्यवाद दिया और कहा कि इससे बढ़कर मेरे लिए हर्ष का समाचार और क्या हो सकता है, क्योंकि २० वर्ष के कारावास के बाद मैं अपने कष्टों के अन्त के लिए तरस रही थी।

तब मेरी ने अपनी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना आदि की। तत्पश्चात् फ्रांस के राजा, राजमाता और कुछ दूसरे लोगों को करुणाजनक पत्र लिखे। अब उसने छोटे से लेकर बडे तक अपने घर के सब नौकर-नौकरानियों को बुलाया और अपने संदूक खुलवाकर जो रुपया बचा पडा था वह उनको बाँट दिया। अपनी नौकरानियों को उसने अपने बचे-खुचे आभूषण दिये और कहा कि खेद है, मेरे पास और अधिक नहीं है। उसने अपने कर्मचारी से कहा कि मेरे बेटे से कहना कि मेरी हत्या का बदला लेने का यत्न न करे। तब बिना आँसू गिराये उसने उन सब को बिदा कर दिया और कहा कि मेरे लिए रोना नहीं, क्योंकि इतना कष्ट पाने के पश्चात् अब मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

अब रात हो गई थी। वह अपने पूजा के कमरे मे चली गई और दो घण्टे तक प्रार्थना करती रही। वहाँ से बाहर आकर उसने अपनी सहचरियों से कहा—"मेरी प्यारियो, मैं समझती हूँ कि मैं थोडा खाकर सो जाऊँ तो अच्छा रहेगा,

ताकि कल सवेरे मुझसे कोई प्रतिष्ठा को गिरानेवाला काम न हो अथवा मैं भयभीत न हो जाऊँ।"

परन्तु मेरी पूरी नींद नहीं सो सकी। सवेरे अरुणोदय के पूर्व उठकर उसने काली मखमल की पोशाक, किर्मजी साटिन की जाकट और एक काला बुर्का पहन लिया। उसने एक सहचरी को अपना रूमाल देते हुए कहा—"जब मै वधस्थल पर पहुँचूँ, तो कृपा करके मेरी आँखों पर इसकी पट्टी बाँध देना। मैं इसी अन्तिम अनुग्रह के लिए प्रार्थना करती हूँ।" उन सबका प्रेमपूर्वक चुम्बन करने के बाद वह फिर अपने उपासना-गृह मे प्रार्थना करने के लिए चली गई। जब वहाँ से लौटकर वह अपने कमरे मे आई, तब सूर्य का उदय हो चुका था। वह अपनी सहचरियों के साथ आग के सामने बैठकर वार्तालाप करने लगी। उसने उनको दिलासा देते हुए कहा कि मेरी मृत्यु के समय उपस्थित रहना ताकि जो घटना हो, उसकी सूचना आप बाद को दे सके।

ज्यों ही मेरी ने बोलना बन्द किया, द्वार पर ज़ोर-ज़ोर से खटखटाने का शब्द सुनाई पड़ा और राजदूतों ने भीतर प्रवेश किया। महारानी बोली—"सज्जनो, आप मुझे लेने आ गये हैं। मैं मृत्यु का आलिङ्गन करने को तैयार हूँ। मैं अनुभव करती हूँ कि मेरी बहन इँगलेंड की महारानी मुझ पर बड़ी कृपा कर रही है और आप लगो भी इस प्रकार मेरे पास आकर वड़ा उपकार कर रहे हैं। चलो चलें।" उसे इस प्रकार स्थिर, और

साथ ही ऐसी मृदुल तथा मञ्जुल देखकर राजदूतों के हृदय हिल गये। वे उस पर तरस खाने लगे।

एक बडे कमरे के मध्य मे सूली गाड़कर उस पर एक मोटा सा टाट डाल दिया गया। महत्ता और मनोहरता की साक्षात् मूर्ति महारानी कमरे मे प्रविष्ट हुई। वह ऐसी ही देख पड़ती थी जैसी नाच के लिए जाते समय। परन्तु उसकी एक सहचरी अपनी स्वामिनी को जल्लादों से घिरी देखकर उच्च स्वर से रोने और विलाप करने लगी। महारानी ने अपने मुँह पर उँगली रखकर संकेत किया। इस पर वह चुप हो गई।

जब महारानी सूली के तख़्ते पर चढ़ी, तो जल्लाद ने अशिष्ट रीति से उसकी बाँह को पकड़कर कमर तक उसके वस्त्र उतार दिये और उसकी भीतर की वास्किट को फाड़कर उसकी सफेद गर्दन और गले को नग्न कर दिया। परन्तु जहाँ तक महारानी से बन पड़ा, उसने अपने इन अङ्गों को छिपाने का पूरा प्रयत्न किया और कहा कि जनता के सामने, विशेषतः इतनी बडी जनता के सामने, कपड़े उतारने का मुझे स्वभाव नहीं। उस समय कोई चार पाँच सौ मनुष्य उपस्थित थे। एक दासी को सम्बोधन करके उसने कहा, मेरी आँखों पर रूमाल से पट्टी बाँध दो। तब बिना किसी हिचकिचाहट के, महारानी चटपट घुटनों के बल बैठ गई। उसकी ऐसी वीरता देख दर्शकगण अपने आँसू न रोक सके।

जल्लाद महारानी की प्रार्थना मे बाधा डालता था, परन्तु उसने लैटिन भाषा में भगवान् का स्तोत्र गान किया और तत्पश्चात्

अपना सिर कुन्दे पर रख दिया। जिस समय वह In manus tuas, Domine, Commendo spiritum meum (अर्थात् प्रभो, अपनी आत्मा को मैं तेरे हाथ सौंपती हूँ) का जाप कर रही थी, जल्लाद ने ज़ोर से उसकी गर्दन पर आघात किया। परन्तु धड़ से सिर को बिलकुल अलग करने के लिए उसे दो बार और चोट मारनी पड़ी। तब तन से पृथक् हुए सिर को उठाकर वह बोला—"परमेश्वर महारानी इलेज़बेथ की रक्षा करे! सत्य धर्म्म के शत्रुओं का इसी प्रकार नाश हो!" इतना कहते हुए उसने मृत महारानी के सिर पर से कपड़ा उतारकर बाल नङ्गे कर दिये। ये बाल जो कभी इतने सुन्दर और चमकीले थे, अब बिलकुल सफ़ेद हो गये थे। इनको वृद्धावस्था ने सफ़ेद नहीं किया था, (क्योंकि इस हत्या के समय उसकी आयु मुश्किल से ४० वर्ष की थी,) ये तो विपत्ति और शोक से ही श्वेत हो गये थे।

मेरी की दासियों को डर था कि कहीं उसके शव का अपमान न हो। इसलिए उन्होंने प्रार्थना की कि जल्लाद महारानी की देह को स्पर्श न करे, हमें ही इसे बाद को नङ्गा करने की अनुमति दी जाय। परन्तु उनको कमरे से बाहर चले जाने का आदेश हुआ। जल्लाद ने जैसे चाहा, मृत देह को लूटा-खसोटा। इसके बाद उसने इसको अपने नौकरों के कमरे के साथ के एक कमरे मे बंद करके ताला डाल दिया। किवाड़ की दरारों मे से महारानी की दासियों ने भीतर झाँककर देखा तो शव को खुरदरे और मोटे टाट के टुकड़े से आधा ढका पाया। वह

लोथ वहीं देर तक पड़ी रही। यहाँ तक कि उसमे सड़ने के चिह्न प्रकट होने लगे। तब उसे जल्दी से दबाने का प्रबन्ध किया गया। सड़ने से बचाने के लिए इस पर थोड़ा सा सुगन्धित मसाला मलकर इसे सीसक के ताबूत मे बन्द कर दिया गया और सात मास तक पड़ा रहने देकर फिर पीटरबौरो कैथेड्रल की भूमि में गाड़ दिया गया। सूली पर डाला हुआ कपड़ा, फ़र्श के त.ख्ते और दूसरी सब वस्तुएँ जिन पर रक्त के छींटे पड़े थे, जला या धो डाली गईं ताकि वे कहीं अन्धविश्वास की वस्तुएँ न बन जायँ।

इस सबके रहते भी, इस महारानी की स्मृति, बड़ी शान और कीर्ति के साथ, सदा के लिए बनी रहेगी।

आगस्टस सीज़र

६३ ई० पू०—सन् १४ ईसवी

[श्रीयुक्त सो० सुएटोनियस ट्रेङ्क्विलियस (लगभग सन् ७५ से दूसरी शताब्दी के मध्य तक) लिखित लैटिन वृत्तान्त के आधार पर ।]

आगस्टस सीज़र इटली का निवासी था। उसका पिता काइस ओक्टेवियस आरम्भ से ही सम्पन्न और प्रसिद्ध व्यक्ति था। सीजर अभी चार ही वर्ष का था कि उसके पिता का देहान्त हो गया। तरुण होने पर उसे बहुत से सैनिक पुरस्कार मिले। उसने सैनिक शक्ति एकत्र करके देश की राजसत्ता चवालीस वर्ष तक अपने हाथ मे रक्खी।

सीजर अपने शत्रुओं और विद्रोहियो के प्रति बड़ी कठोरता का व्यवहार करता था। बड़े बड़े सम्भ्रान्त राजबन्दियों के साथ भी वह न केवल क्रूरता का वर्ताव ही करता था वरन् उन्हे गालियाँ तक दे बैठता था। कहते हैं, जब एक राजबन्दी ने अनुनयपूर्वक कहा कि मेरे शव को कम से क़म दबा तो दिया जाय तो उसने उत्तर दिया कि "वह बात तो पक्षियों की शक्ति मे होगी।"

एक समय की बात है, किसी नाट्यशाला मे एक साधारण सिपाही अपना स्थान छोड़कर वहाँ आ बैठा जहाँ प्रतिष्ठित

लोग बैठा करते थे। सीज़र ने एक अफ़सर से कहकर उसे निकलवा दिया। सीज़र के शत्रुओं ने अफवाह उड़ा दी कि उसने सिपाही को बड़ा कष्ट देने के बाद मरवा डाला है। इस पर दूसरे सिपाही क्रोध में भरे हुए सीज़र के पास दौड़ आये। वह बडी कठिनाई से अपने प्राण बचा सका। अच्छी बात यह हुई कि वह सिपाही सकुशल वहाँ आकर उपस्थित हो गया। उसे देखकर लोग शान्त हो गये।

आगस्टस सीजर ने पेरूगिया के युद्ध के बाद बहुत से बन्दियों को मरवा डाला। जो भी बन्दी उससे क्षमा-याचना करता था उसे वह एक ही उत्तर देता था—"तुम्हे अवश्य मरना पड़ेगा।"

सीजर को अपने जीवन मे अनेक विद्रोह, षड्यन्त्र और बलवे दबाने पड़े। उसकी अभिलाषा सिकन्दर महान् का ताबूत और शव देखने की थी। जिस कोठरी मे ये दोनों चीज़े रक्खी हुई थीं उसमे से उनको बाहर निकाला गया। कुछ देर तक उनको देखने के पश्चात् उसने एक स्वर्ण-मुकुट देकर एवं शव पर पुष्प-वर्षा करके उस महापुरुष की वन्दना की। जब उससे पूछा गया कि आप मिस्र के शासक टोल्मियों के समाधि-मन्दिर देखना चाहते हैं, तो उसने उत्तर दिया—"मैं राजा को देखना चाहता हूँ, मृत मनुष्यों को नहीं।"

विदेशों के साथ सीजर ने केवल दो लड़ाइयाँ लड़ीं। बिना किसी उचित और आवश्यक कारण के वह युद्ध नहीं करता था। उसे साम्राज्य-विस्तार या सैनिक कीर्ति की आकांक्षा न

थी। वह कहा करता था कि "तब तक लड़ाई या युद्ध नहीं छेड़ना चाहिए जब तक लाभ की आशा हानि से अधिक न हो। क्योंकि जो बड़ी जोखिम उठाकर थोड़े लाभ के पीछे दौड़ते हैं वे उन लोगों के समान हैं जो मछली को पकड़ने के लिए सोने का काँटा डालते हैं, जिसकी हानि, यदि डोरी टूट जाय तो, उन सब मछलियों से भी पूरी नहीं हो सकती जिनको वे पकड़ सकेंगे।"

सीज़र अपनी योग्यता से छोटी ही आयु में ऐसे उच्च पदों पर पहुँच गया जो नियमानुसार उसे नहीं मिल सकते थे। बारह बरस की आयु में ही वह रोम का कौंसल बन गया। उसे अपने विरुद्ध षड्यंत्रियों का भय लगा रहता था। रोम नगरी रोमन साम्राज्य की शान के योग्य नहीं बनी थी। उसमें कभी तो टाइबर नदी की बाढ़ से और कभी अग्नि-दाह से भारी हानि हो जाती थी। आगस्टस सीज़र ने अपने शासन-काल मे इसका बहुत सुधार किया। वह ठीक ही कहा करता था—"यह नगरी ईंटों की बनी थी, मैंने इसे सगमरमर का बना दिया।" उसने नगर को कई प्रदेशों और मण्डलों में बाँटा और आज्ञा दी कि वार्षिक मैजिस्ट्रेट प्रदेशों का और जनता द्वारा चुने हुए संतरी मण्डलों का निरीक्षण किया करे। आग से रक्षा करने के लिए उसने चौकीदार नियत कर दिये जो रात को चौकसी करते थे। पानी की बाढ़ से बचने के लिए उसने टाइबर नदी का पाट चौड़ा और उसकी तलहटी गहरी करा दी। उसने भविष्य बताने-

वाली सभी पुस्तकें,-लैटिन और ग्रीक दोनों भाषाओं में-जिनके रचयिता अज्ञात अथवा बहुत साधारण थे, दो सहस्र से भी अधिक इकट्ठी करके अग्निदेव के भेंट कर दीं। उसने पञ्चाङ्ग का सुधार किया और सेकुसटिलिस मास का नाम अपने नाम पर आगस्ट रक्खा। पहले पैंतीस बरस से कम आयु के जज नहीं रक्खे जाते थे, परन्तु वह तीस बरस के भी रखने लगा। नवम्बर और दिसम्बर दो मास अदालतों में छुट्टी रहती थी।

विचारपति के रूप मे सीज़र आप भी बड़ा परिश्रमी था। कभी कभी तो वह रात तक अदालत करता रहता था। अस्वस्थ होने पर ट्रीव्यूनल के सामने उसकी पालकी रख दी जाती थी, या घर पर लेटे लेटे ही वह अदालत करता था। उन दिनों जो व्यक्ति स्वयं स्वीकार कर ले कि मैंने माता-पिता का वध किया है उसे ही बोरे मे सीकर दण्ड दिया जाता था। परन्तु आगस्टस उसे इस दण्ड से बचाने के लिए पूछता था—"अवश्य ही तुमने अपने पिता की हत्या नहीं की, क्यों ठीक है न ?"

सीज़र ने कई पुराने कानूनों को रद्द कर दिया और कई नये क़ानून—उदाहरणार्थ व्यभिचार और सतीत्व-भङ्ग-विषयक कानून, निर्वाचन में घूस के विरुद्ध और विवाह को प्रोत्साहन देनेवाला क़ानून—बनाये। बहुत से मनुष्यों को सरकारी नौकरी में लेने के लिए उसने कई नये पद और काम निकाले। वह रोमन सामन्तों पर इसलिए बड़ी कड़ी दृष्टि रखता था कि वे बिगड़ न जायँ। वे लोग कम व्याज पर रुपया उधार लेकर आगे अधिक व्याज

पर दूसरों को दे देते थे। उनके इस काम के लिए वह उनको ख़ूब डाँटता-डपटता था। उसने रोमन लोगों की मनुष्य-गणना अलग-अलग गली की ली।

सीज़र विविध अवसरों पर सभी श्रेणियों के लोगों पर अपनी दानशीलता दिखाया करता था। सिकन्दरिया को जीतने पर, जब वह मिस्र के राजाओं का ख़ज़ाना नगर मे लाया, तो उसने रुपये की इतनी बहुतायत कर दी कि व्याज की दर गिर गई और भूमि का मूल्य पर्याप्त बढ़ गया। बहुत रुपया हो जाने पर वह लोगों को ज़मानत पर, विना व्याज के भी, रुपया उधार दे दिया करता था। अन्न का अकाल होने पर वह बहुत सस्ते मूल्य पर या मुफ़ मे अन्न बाँटता था। एक समय नगर में अन्न का बहुत अधिक अभाव हो जाने पर, जब उसे दूर करना कठिन जान पड़ा, तो उसने आज्ञा दी कि दासों का दल, जो बेचने के लिए यहाँ लाया गया है, दङ्गल का व्यवसाय करनेवाले मल्ल (ग्लेडिएटर) और सब के सब विदेशी, सिवाय चिकित्सकों और अध्यापकों के, नगर से बाहर निकाल दिये जायँ। बहुत से घरेलू दास भी इस प्रकार निकाल दिये गये। जब अकाल दूर हो गया, तो वह इस प्रकार लिखता है—"मेरी प्रबल इच्छा थी कि सरकारी ख़र्च से लोगों को अन्न देने की प्रथा सदा के लिए बन्द कर दी जाय; क्योंकि इससे वे इतने आलसी हो जाते हैं कि अपनी भूमियों को जोतना छोड़ देते हैं; परन्तु मैं अपनी इस इच्छा पर दृढ़ नहीं रह सका, क्योंकि

मुझे विश्वास था कि कभी न कभी कोई लोकैषणा का इच्छुक इसे दुबारा जारी कर देगा।"

जनता के मनोरञ्जन के लिए भी सीज़र खेल-तमाशे का पर्याप्त प्रबन्ध किया करता था। जब कोई और सार्वजनिक अवसर न हो तो वह अद्भुत वस्तुओं को ही दिखाकर जन-रञ्जन करता था। एक बार उसने लोगों को गैंडा, एक बार बाघ और एक बार पचास हाथ लम्बा अजगर मँगाकर दिखलाया था। वह दङ्गल देखने के लिए स्त्रियों को पुरुषों से अलग बिठाता था। वह रङ्ग-मञ्च के खिलाड़ियों में व्यभिचार को रोकने का बडी कड़ाई से यत्न करता था। एक समय की बात है, उसे पता लगा कि स्टीफेनियो नाम के एक उच्च कोटि के खिलाड़ी ने एक विवाहिता स्त्री को, उसके बाल कटवाकर और लड़के के वस्त्र पहनाकर, भोजन परोसने के लिए रख छोड़ा है। इस पर उसने तीनों रङ्ग-मञ्चों मे स्टीफेनियो को कोड़े लगवाये और नगर से निकाल दिया।

सीज़र ने रोम की जन-संख्या बढ़ाने का भी यत्न किया। उसमें उसने अट्ठाईस से भी अधिक बस्तियाँ बसाईं और इटली के प्रान्तों में घूमकर उन निम्न श्रेणी के लोगों को एक सहस्र सेस्टर्स प्रति मनुष्य दिया जिन्होंने उसके सामने अपने पुत्र और पुत्रियाँ पेश कीं। सारे प्रान्त के समाचारों को जानने के लिए उसने सैनिक मार्गों के साथ-साथ, थोड़े-थोड़े अन्तरों पर पहले तो नवयुवक रक्खे और फिर शीघ्रगामी वाहनोंवाले नियमित दूत नियुक्त किये।

राजाज्ञा, चिट्ठियों और लेटर-पेटण्ट पर पहले तो सीज़र स्फिंक्स (स्त्री के सिर और सिंह के शरीरवाली मूर्त्ति-विशेष) से छाप लगाया करता था, फिर बाद को महान् सिकन्दर के सिर की और अन्त को अपने सिर की छाप लगाने लगा। उसके पश्चात् होनेवाले सम्राटों ने इसी प्रथा को जारी रक्खा। अपनी चिट्ठियों में तिथि और समय लिखने का वह विशेष ध्यान रखता था।

सीजर अपने को 'प्रभु' कहलाना पसन्द नहीं करता था। इस शब्द को वह अपशकुन-सूचक और चिढ़ानेवाला समझता था। एक समय वह एक नाट्यशाला में बैठा था। वहाँ अभिनय में किसी ने उसे इन शब्दों से सम्बोधन किया—"हे न्यायकारी और दयालु प्रभु!" जितने लोग वहाँ बैठे थे वे उसके प्रति ये शब्द सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। परन्तु उसने हाथ से हिलाकर और त्योरी चढ़ाकर तत्काल उनकी इस अयुक्त चापलूसी को बन्द करा दिया और दूसरे दिन सार्वजनिक रूप में अपनी अप्रसन्नता की घोषणा कर दी। उसने दूसरे लोगों को भी एक दूसरे के प्रति ऐसे प्रशसात्मक शब्दों का प्रयोग करने से मना कर दिया।

अपने शासन-काल में सीज़र गलियों में प्रायः पैदल घूमा करता था। उसकी कचहरी मे निर्धन भी वैसे ही बेधड़क जा सकते थे जैसे धनवान्। जो लोग उसके पास आवेदन-पत्र देने आते उनके साथ वह ऐसा मीठा बोलता कि एक बार उसने

एक व्यक्ति को हँसी से डाँटते हुए कहा—"आप अपना आवेदन-पत्र ऐसे सङ्कोच के साथ दे रहे हैं जैसे आप किसी हाथी को रुपया दे रहे हों।" वह प्रजा के सुख-दुःख के अवसरों पर उनके यहाँ बराबर पहुँचता था।

सेनेट (शिष्ट सभा) में बोलते समय एक सदस्य ने कहा—"मैं आपका आशय नहीं समझा।" दूसरे ने कहा—"यदि मुझे कोई हानि का भय न हो तो मैं आपका खण्डन करना चाहता हूँ।" जब सेनेट मे बड़ा गर्मागर्म विवाद चलता था तो अनेक बार वह रुष्ट होकर सभा से बाहर चला जाता था। ऐसे समय पर सदस्यगण कह देते थे कि "निश्चय ही सदस्यों को राजकीय विषयों पर बोलने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।" उसके राजत्वकाल मे बोलने की स्वतन्त्रता के लिए किसी को कष्ट नहीं दिया जाता था, चाहे वह धृष्टता की सीमा तक ही क्यों न पहुँच जाय। सीज़र जनता की स्वतंत्रता की रक्षा बड़ी सावधानी से करता था।

सीज़र चाहता था कि उसके मित्र राज्य मे बड़े और शक्तिशाली हों। परन्तु उनको विशेषाधिकार देना या उन राजनियमों से मुक्त करना, जो दूसरे लोगों पर लागू होते थे, उसे अभीष्ट न था। आगस्टस के एक मित्र पर विष-प्रयोग का अभियोग चला, तब उसने शिष्ट सभा से परामर्श माँगा कि इस अवस्था में मेरा क्या कर्तव्य है। उसने कहा, "कारण यह है कि यदि मैं इस मामले में मित्र का साथ देता हूँ तो मुझे भय है कि कहीं

यह न समझा जाय कि मैं एक अपराधी को छिपाने का यत्न कर रहा हूँ, और यदि मै उसका साथ नहीं देता तो मित्र का साथ छोड़ने और पूरा मुकदमा सुनने के पूर्व ही निर्णय करने का दोष आता है।" शिष्ट सभा ने उसे मित्र के पत्तपोषकों में बैठने की अनुमति दे दी।

अपने ऐसे न्यायोचित व्यवहार से सीजर कितना लोकप्रिय बन गया था, इसकी कल्पना करना कुछ कठिन नहीं। शिष्ट सभा ने उसके सम्मान मे बहुत से विधान बनाये। इसके अतिरिक्त रोम के नाईट स्वेच्छापूर्वक और एकमत से उसका जन्मोत्सव इकट्ठा दो दिन मनाते थे; और सब श्रेणियों के लोग, प्रतिवर्ष, अपने लिये हुए व्रत के अनुसार, उसके कल्याण के लिए भेंट-स्वरूप, कर्टियन सरोवर मे कोई सिक्का फेंका करते थे। देश के सब लोगों ने, आकस्मिक उत्तेजना से, एकमत होकर उसे "स्वदेश-पिता" की उपाधि देनी चाही। जनता के कुछ प्रतिनिधियों ने जाकर उस पर यह बात प्रकट की। परन्तु उसने इसे ग्रहण करने से इनकार कर दिया। इस पर कुछ काल उपरान्त सेनेट (शिष्ट सभा) ने सर्व-सम्मति से इन शब्दों मे एक प्रस्ताव स्वीकार किया—"सीज़र आगस्टस, आपकी एवं आपके परिवार की सुख-समृद्धि के लिए हार्दिक कामनाओं के साथ (क्योंकि हम समझते हैं कि इस प्रकार हम राज्य के नित्य कल्याण के लिए अतीव अमोघ प्रार्थना करते हैं), शिष्ट सभा, रोमन जनता की सम्मति से, आपको "स्वदेश का पिता" की उपाधि के साथ

प्रणाम करती है।" इस प्रशंसा के उत्तर में आगस्टस सीज़र ने, सजल-नयन होकर, यों उत्तर दिया--"हे सभ्यगण, मैं अपनी कामनाओं के शिखर पर पहुँच चुका हूँ, अब मुझे अमर देवगण से इसके सिवा और क्या माँगना शेष है कि आप लोगों का मेरे प्रति यह प्रेम मेरे जीवन की अन्तिम घड़ियों तक निरन्तर बना रहे।" इटली के कुछ नगरों ने उस दिन को, जिस दिन वह पहली वार वहाँ गया, अपने वर्ष का पहला दिन नियत कर दिया। उसके मित्र तथा सहायक राजाओं ने अपने अपने राज्यों में नगर बसाकर उनका नाम सीज़रिया रक्खा।

सीज़र के नागरिक एवं सैनिक जीवन के बाद अब उसके निजी तथा घरेलू जीवन का, घर में तथा अपने मित्रों एवं आश्रितों में उसके स्वभाव का, और यौवन से लेकर उसके मृत्यु-दिवस तक उसे प्राप्त होनेवाले सौभाग्य का वर्णन करेंगे। उसकी माता का देहान्त तभी हो गया था जब वह पहली वार कौंसल (राजाधिकारी) बना था। वह चौवनवें वर्ष में था जब उसकी बहन ऑक्टेविया की मृत्यु हो गई। उसके जीवनकाल में सीज़र उसके साथ अतीव दयापूर्ण बर्ताव करता था। और ऑक्टेविया के परलोकगमन के बाद उसने उसकी स्मृति मे बड़ा भारी सम्मान दिखलाया।

बहुत छोटी आयु में सीज़र की सगाई एक लड़की के साथ हो गई थी, परन्तु बाद को एण्टनी के साथ सन्धि हो जाने के कारण, दोनों ओर की सेनाओं के इस बात पर ज़ोर देने से कि आपस में कौटुम्बिक सम्बन्ध हो जाना चाहिए, उसे एण्टनी की

सौतेली लड़की क्लौडिया के साथ विवाह करना पड़ा, यद्यपि उस समय वह विवाह-योग्य भी न थी। बाद को अपनी सास फलविया के साथ झगड़ा हो जाने के कारण उसने क्लौडिया को, अछूती की अछूती, तलाक दे दिया। इसके बाद उसने स्क्रिबोनिया नाम की एक स्त्री को पत्नी बनाया। उसका पहले दो बार विवाह हो चुका था और वह एक पुत्र की माता भी थी। उसके चिड़चिड़े स्वभाव से तङ्ग आकर सीज़र ने उसे भी छोड़ दिया और जल्दी ही लिविया डरूसिला नाम की एक गर्भवती स्त्री को उसके पति से ले लिया।

स्क्रिबोनिया से सीजर को जूलिया नाम की एक लड़की थी, परन्तु उत्कट लालसा रहने पर भी लिविया से उसे कोई सन्तान न हुई। आगस्टस ने अपनी लड़की पहले तो अपनी बहन के पुत्र मासीलस को दी; और उसकी मृत्यु के बाद अपनी बहन के जमाई, मार्कस अग्रिप्पा को। अग्रिप्पा उस समय विवाहित था और उसके बच्चे भी थे। अग्रिप्पा के मर जाने पर वह देर तक जूलिया के लिए वर ढूँढ़ता रहा। अन्त को उसने टाईबरियस को चुनने का निश्चय किया। उसने टाईबरियस को, अपनी पत्नी को छोड़ देने पर, विवश किया जो कि उस समय गर्भवती थी और उससे एक बच्चा पैदा भी कर चुकी थी। मार्क एण्टनी लिखता है—"उसने पहले उसके पुत्र के साथ जूलिया का सम्बन्ध किया, और बाद को गेटी के राजा कोटिसो से, और इसके साथ ही उसने राजा से उसकी लड़की अपने लिए माँगी।"

अग्रिप्पा और जूलिया से उसे तीन नाती और दो नतनियाँ हुईं। कैउस और लूसियस नाम के दो नातियों को उसने उनके पिता से, खरीदने की प्रक्रिया द्वारा, दत्तक ले लिया और उन्हें प्रान्त एवं सेनाओं को देखने के लिए भेज दिया। अपनी पुत्री और नतनियों की शिक्षा के लिए उसने उनको घरेलू काम करने की, यहाँ तक कि कातने की, आदत डाली। वह उन्हें प्रत्येक बात और प्रत्येक काम खुल्लमखुल्ला परिवार के सामने करने को विवश करता था ताकि वह काम दिन-पत्रिका में लिखा जा सके। उसने उनका अपरिचितों से बात-चीत करना सर्वथा बन्द कर रक्खा था, यहाँ तक कि उसने एक भद्र कुल के सुन्दर युवक, लूसियस विनिसियस, को लिखा—"तुमने मेरी लडकी से मिलने में यथेष्ट मर्यादा का पालन नहीं किया।" वह अपने नातियों को प्रायः पढ़ना, तैरना और ज्ञान की दूसरी प्रारम्भिक बातें आप ही सिखाया करता था। वह इस बात पर बड़ा ज़ोर देता था कि उनकी हस्तलिपि पूर्ण रूप से उसके अपने अक्षरों की ऐसी हो। जब भी खाने को बैठता, उनको साथ लेकर बैठता; जब भी यात्रा करने निकलता, उनको रथ मे बैठाकर आगे कर लेता या घोड़े पर अपने साथ-साथ ले चलता। परन्तु उसके बहुसंख्यक और सुव्यवस्थित कुटुम्ब मे, हर्ष और आशाओं के बीच, उसके भाग्य ने जवाब दे दिया। उसकी पुत्री और नातिन व्यभिचार तथा कामुकता मे इतनी डूब गईं कि उसने उन दोनों को घर से निकाल दिया। उसके दोनों दत्तक, कैउस और लूसियस,

एक दूसरे के बाद अठारह महीने के भीतर-भीतर मर गये। उसने अपने आत्मीयों की मृत्यु को उनके अपयश की अपेक्षा अधिक धैर्य के साथ सहन किया। अपनी पुत्री की अपकीर्त्ति से वह इतना लज्जित था कि उसने कुछ काल तक लोगों को मुँह दिखाना छोड दिया और वह जूलिया की हत्या कर डालने का विचार करने लगा। देश-निकाले के दिनों मे वह उसे न तो मदिरा-पान करने देता था और न सुन्दर कपड़े पहनने देता था। बिना अपनी आज्ञा के वह उसके पास किसी पुरुप नौकर को भी न जाने देता था। वह एक टापू मे निर्वासित थी। पॉच वर्प के बाद उसे वहाँ से देश मे लाया गया। अब उसके साथ कम कठोरता का व्यवहार होने लगा। परन्तु बहुतेरा कहने-सुनने पर भी उसने जूलिया को अपने घर मे बुलाना स्वीकार न किया। रोमन लोग जूलिया की ओर से अनेक बार अनुनय-विनय-पूर्वक बीच में पड़े, परन्तु उन्हे वह केवल इतना ही उत्तर देता—“मैं चाहता हूॅ कि आप सब के भी ऐसी ही पुत्रियाँ और पत्नियॉ होतीं।” कई बार तो वह दुःख से कहा करता—“कैसा अच्छा हो जो मेरे पत्नी न होती या मैं निःसन्तान मर जाता।” वह बहुत सोच-समझकर मित्र बनाता था, परन्तु एक बार मित्र बना लेने पर फिर उसे जल्दी छोड़ता नही था। वह मित्रों के गुण-अवगुण के अनुसार सद्गुणों और योग्यताओं का न केवल पुरस्कार ही देता था, वरन् उनके दुर्लक्षणो एवं दोपों को भी, यदि वे क्षमायोग्य हों तो, सहन करता था।

प्रश्रय-दाता और स्वामी के रूप मे, प्रायः सीज़र का बर्ताव मृदु और मैत्रीपूर्ण होता था; परन्तु आवश्यकता होने पर वह कठोर भी हो जाता था। एक समय वह अपने एक परिचारक के साथ जङ्गल मे घूम रहा था कि एक जङ्गली सूअर ने उस पर आक्रमण कर दिया। परिचारक अपने स्वामी को बचाने के बदले उसे छोड़कर भाग गया। इस पर सीज़र ने उसे कर्तव्य-त्याग के लिए दण्ड नहीं दिया, वरन् उसकी कायरता बताकर हँस दिया। दूसरों की स्त्रियों के साथ पापपूर्ण सम्बन्ध रखने के कारण उसने अपने एक बहुत ही प्रिय व्यक्ति, प्रोकूलस, को मृत्यु-दण्ड दे दिया था। एक व्यक्ति ने उसकी चिट्ठी में लिखी हुई बातों को जानने के लिए उसके मन्त्री, थेलस, को पाँच सौ डीनारी घूस दी। मालूम हो जाने पर उसने मन्त्री की टाँगें तुड़वा डालीं। उसके पुत्र कैउस के उपाध्याय और अन्य सेवकों ने, कैउस की अस्वस्थता और मृत्यु से लाभ उठाकर, उसके द्वारा शासित प्रान्त में औद्धत्य और लूट मचा दी। आगस्टस ने उनके गले मे भारी बोझ बाँधकर उनको नदी में फेंक दिया।

आगस्टस के मित्र भी इस बात से इनकार नहीं कर सके कि उसका चरित्र शुद्ध था; परन्तु इसके लिए बहाना वे यह देते हैं कि उन षड्यन्त्रों मे वह कामुकता के कारण नहीं वरन् नीति के कारण भाग लेता था, ताकि वह अपने शत्रुओं के भेद उनकी भार्याओं द्वारा अधिक आसानी से मालूम कर सके। उसमे विलासितामय अपव्यय बिलकुल न था। सिकन्दरिया नगरी

को विजय करने पर उसने एक चीनी के प्याले के सिवा अपने पास राजकीय कोष में से और कुछ नहीं रक्खा और तुरन्त ही सोने के सब बासन गला डाले।

घर के फर्नीचर (पलँग, कुर्सी, टेबिल आदि) मे सीज़र बहुत ही मितव्ययिता से काम लेता था। उसके घर में बहुत ही साधारण सामान रहता था। कहते हैं, वह कभी पलँग पर नहीं लेटता था, सिवा उसके जो नीचा और बहुत थोड़े सामान वाला हो। वह बहुधा वही कपड़े पहनता था जो उसकी भार्या, भगिनी, बेटी और नातिनों ने हाथ से बनाये हों। उसके जूते साधारण लोगों के जूतों से थोड़ा अधिक ऊँचे होते थे ताकि वह उससे अधिक लम्बा प्रतीत हो जितना कि वह वास्तव मे था।

सीज़र का भोजन सदा प्रचुर और सुन्दर होता था। वह दस-पॉच आदमियों के साथ भोजन करता था, परन्तु चरित्र और पद की दृष्टि से वह इनको चुनने मे बड़ा शङ्काशील था। पर्व और छुट्टियाँ मनाने पर वह प्रायः बहुत ख़र्च करता था, परन्तु कभी कभी केवल उल्लास के साथ ही मनाता था। वह अल्पाहारी था और सामान्यतः सादा भोजन करता था।

दोपहर को हलका भोजन करने के बाद सीज़र विश्राम करता था। जूते और कपड़े पहने, पाँव को ढके, आँखों पर हाथ रखकर वह लेट जाता था। रात को भोजन के पश्चात् वह प्रायः अपने पढ़ने के कमरे मे चला जाता था और देर तक बैठा रहता था। जब तक अपनी दिन-पत्रिका मे दिन के सारे

काम न लिख ले तब तक नहीं सोता था। तब वह पलँग पर लेट जाता था, परन्तु सात घंटे से अधिक नहीं सोता था। इस बीच भी वह तीन चार बार जागता था। यदि उसे दुबारा नींद न आती तो वह किसी को बुलाकर कहानियाँ सुनने या पुस्तक पढ़ाने लगता, यहाँ तक कि उसे ऊँघ आ जाती। अब वह पौ फटने तक सोता रहता। जब तक कोई दूसरा उसके निकट न बैठा हो, अँधेरे मे जागकर लेटे रहना उसे पसंद न था। बहुत तड़के उठना उसके अनुकूल न था। यदि उसे किसी आवश्यक काम से तड़के जागना पड़े, तो इससे होनेवाली बे-आरामी से यथासंभव बचने के लिए वह उस स्थान के निकटवर्ती किसी सेवक के कमरे में टिक जाता था। यदि बाज़ार मे से लाँघते समय कभी ऊँघ आ जाय तो उसकी पालकी वहीं रख दी जाती थी ताकि वह कुछ पल नींद ले ले।

सीज़र के सारे जीवन मे उसका शरीर सुन्दर तथा मनोहर बना रहा। परन्तु अपने परिधान के विषय मे वह असावधान था। बालों को सँवारने मे वह इतना लापरवा था कि जल्दी में एक ही समय मे कई नाई लगा कर बाल बनवाता था। दाढ़ी को कभी तो वह कतरवाता था, कभी उस्तरे से साफ कराता था, और साथ साथ पढ़ता या लिखता भी जाता था।

सीज़र अपने स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रखता था। सरदी से बचता था। वह बहुधा तेल की मालिश कराता और भट्टी

के सामने बैठ कर पसीना लेता था, तत्पश्चात् वह गुनगुने जल से स्नान करता था।

घरेलू युद्ध बन्द हो जाने पर सीज़र ने घोड़े की सवारी और दूसरे सैनिक व्यायाम बन्द कर दिये और वह फुटबाल खेलने लगा। परन्तु इसके उपरान्त ही सब व्यायाम छोड़कर वह केवल वायु-सेवन करने या पालकी में बैठकर घूमने ही लगा। सैर के अन्त पर वह छलाँगें मारकर दौड़ा करता था। मनोरञ्जन के लिए वह कभी मछली पकड़ता, कभी पासा खेलता, या देश-देशान्तरों के इकट्ठे किये हुए—विशेषतः मूर और सिरियन—सुन्दर लडकों के साथ कङ्कडों तथा बादाम आदि से खेलता था। बौने और कुरूप लड़कों को अपशकुन समझकर वह घृणा करता था।

लड़कपन से ही सीज़र बड़े परिश्रम एवं मनोयोग के साथ वक्तृत्वकला और दूसरी विद्याओं को सीखने लगा था। लोगों के साथ, यहाँ तक कि अपनी पत्नी लिविया के साथ भी, किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर बात-चीत करते समय वह जो कुछ कहना चाहता था, अपनी तख़्तियों पर लिख लिया करता था ताकि बिना तैयारी के बोलने से वह कहीं उचित से न्यूनाधिक न कह बैठे। उसके भाषण का ढङ्ग बड़ा मधुर और अनोखा था। वक्तृत्वकला के एक शिक्षक ने उसे यह सिखाया था। प्रतिश्याय होने पर वह कभी-कभी घोषणा करनेवाले किसी अधिकारी द्वारा अपना सन्देश जनता तक पहुँचाता था।

सीजर ने गद्य मे विविध विषयो पर अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें बनाई थीं। उन्हे वह अपने मित्रों को पढ़कर सुनाया करता था। इसी प्रकार कविता बनाने का भी उसने कुछ यत्न किया था।

सीज़र के बोलने और लिखने की शैली शुद्ध तथा परिष्कृत थी। वह कठोर या निरर्थक भाषा और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं करता था। इनको वह वीभत्स कहता था। उसका मुख्य उद्देश्य अपने विचारों को यथासम्भव अधिक से अधिक प्राञ्जलता के साथ प्रकट करना होता था। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए, और इसलिए कि उसके पाठक या श्रोता कहीं उलझन मे न फँस जायँ या रुक न जायँ, वह अपने क्रिया-पदों के साथ उपसर्ग लगाने या उसी संयोजक अव्यय को कई वार दुहराने मे सङ्कोच नहीं करता था। इनको छोड़ देने से वाक्य थोड़ा अस्पष्ट तो हो जाता है, परन्तु शैली में सौन्दर्य आ जाता है। जो लोग बनावटी भाषा का उपयोग करते या अप्रचलित शब्दों को अपनाते थे, उनको समान रूप से, यद्यपि विभिन्न रीतियें से, सदोष समझकर वह घृणा करता था। वह कभी कभी अपने मित्रों से परिहास भी किया करता था। वह अपने मित्र मेसीनास की, उसकी कोमल पदावली के लिए, सभी अवसरों पर हँसी उड़ाता और उसके बात-चीत करने के ढङ्ग की नकल करके उसकी दिल्लगी किया करता था। वह मार्क एएटनी को पागल समझता था; क्योंकि वह, उसकी राय में, अपना आशय समझाने के बजाय लोगों को दङ्ग करने के

लिए लिखता था। उसने अपनी नातिन, एग्रिप्पिना, को एक पत्र में लिखा था—"क्या तो लिखने और क्या बोलने मे कृत्रिमता से बचने का सदा ध्यान रखना।" वह किसी शब्द को विभक्त नहीं करता था। लिखते समय यदि कोई शब्द पंक्ति के अन्त में पूरा न लिखा जाय, तो उसका शेषांश दूसरी पंक्ति मे लिखने के बजाय वह उसे उसी के नीचे लिखकर कोठे मे बन्द कर देता था।

सीज़र वैयाकरणों के बनाये वर्णविन्यास-शास्त्र का पूर्ण रूप से पालन नही करता था। वह तो उन लोगों के मत का जान पड़ता है जो कहते हैं कि हमे वैसा ही लिखना चाहिए जैसा हम बोलते हैं।

ग्रीक और लैटिन ग्रन्थों का अध्ययन करते समय सीजर निजी या सार्वजनिक जीवन में काम आनेवाले नीति-वाक्यों और दृष्टान्तों पर विशेष ध्यान देता था। वह उस युग के प्रतिभाशाली मनुष्यों को सभी सम्भव रीतियों से प्रश्रय देता था। वह बड़े धैर्य और शान्ति के साथ उनकी कृतियों को सुनता था। वह अपने सम्बन्ध मे किसी ऐसी बात को देखकर, जो उदात्त रीति से या विख्यात योग्यतावाले मनुष्य द्वारा न लिखी गई हो, अप्रसन्न होता था।

शकुन आदि के सम्बन्ध मे सीजर का कैसा विश्वास था, इसका पता आगे के वर्णन से लग जायगा। वह बिजली और गर्जना से इतना डरता था कि रक्षा के लिए सदा अपने साथ सील की खाल लिये रहता था। रात्रि को यात्रा मे यदि बिजली

चमके और प्रचण्ड आँधी का भय हो तो वह किसी तहख़ाने मे छिप जाता था। वह न तो अपने स्वप्नों की ओर न अपने सम्बन्ध मे किसी दूसरे के स्वप्नों की उपेक्षा करता था। एक बार उसे एक ऐसा स्वप्न हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप वह सदा, वर्ष के एक विशेष दिन, लोगों से भिक्षा माँगता और हाथ फैलाकर दान लेता था। कुछ लक्षण और शकुन ऐसे थे जिनको वह अचूक समझता था। यदि सबेरे वह ग़लत जूता, दायें के स्थान मे बायें पैर का, पहन ले तो वह समझता था कि कोई बड़ा भारी अनर्थ होनेवाला है। स्थल या जल-मार्ग से यात्रा आरम्भ करते समय यदि बूँदा-बाँदी होने लगे तो वह समझता था कि मै सकुशल और शीघ्र ही लौट आऊँगा।

एक समय की बात है, सीज़र बीमार था और कुछ दिन विश्राम लेने के लिए केपरी द्वीप में गया था। संयोग से सिकन्दरिया के एक जहाज के नाविक और यात्री वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उसकी आरती उतारकर प्रशंसा करते हुए कहा—"हम आप ही के सहारे जीते है, आप ही के प्रताप से हमारे जहाज़ सुरक्षित हैं, आप ही के प्रताप से हम स्वतन्त्रता और सम्पत्ति का उपभोग कर रहे हैं।" इस पर बहुत प्रसन्न होकर उसने प्रत्येक को चालीस चालीस स्वर्ण-मुद्राएँ दीं और उनसे शपथ ली कि इस धन का उपयोग सिवा सिकन्दरिया का माल ख़रीदने के और किसी दूसरे काम में नहीं करेंगे। इसी प्रकार वह केपरी मे लड़कों के व्यायाम देखता रहा। उसने अपने सामने उनको

एक मिष्टान्न-भोज दिया और उनको केवल अनुमति ही नहीं दी वरन् आदेश किया कि ख़ूब खुलकर हँसी-ठट्ठा करें। वह फल, खाद्य-पदार्थ और दूसरी वस्तुएँ उनमे फेककर कहता था कि इनको पाने के लिए संघर्ष करो।

अपनी मृत्यु के दिन सीज़र बीच बीच मे पूछता था कि मेरे कारण नगर मे कोई दङ्गा तो नहीं हो रहा है। एक दर्पण मँगाकर उसने आज्ञा दी कि मेरे बालों में कङ्घी की जाय और मेरे सिकुड़े हुए गालों को ठीक कर दिया जाय। तब कमरे मे उपस्थित अपने मित्रों से उसने पूछा—"क्या आप समझते हैं कि जीवन के रङ्ग-मञ्च पर मैंने अपना अभिनय अच्छा किया है?" इसके साथ ही उसने कहा—"यदि सब ठीक है तो उच्च स्वर से हर्ष के साथ अभिनेता का गुणगान कीजिए।"

इसके बाद सीज़र ने सबको बिदा कर दिया और जो लोग रोम से आये थे उनसे ड्रूसस की पुत्री का, जो रुग्ण थी, समाचार पूछा। लिविया उसको चूम रही थी कि इन शब्दों के साथ एका-एक उसके प्राण निकल गये—"लिविया! हमारे संयोग को कभी न भूलना; अच्छा अब चलता हूँ!" वह सदा ऐसी ही शान्त मृत्यु की कामना किया करता था। जब कभी वह सुनता कि अमुक व्यक्ति झटपट और बिना किसी पीड़ा के मर गया, तो वह अपने लिए और अपने मित्रों के लिए वैसी ही शान्त मृत्यु चाहता।

मरने के पहले उसने चित्तविभ्रम का केवल एक ही लक्षण प्रकट किया, और वह यह कि वह एकदम बहुत डर गया और

शिकायत करने लगा कि मुझे चालीस मनुष्य उठाये लिये जा रहे है। परन्तु चित्तविभ्रम की अपेक्षा यह एक पूर्व-सूचना थी। मृत्यु के उपरान्त इतने ही सिपाहियों ने उसके शव को उठाया।

पैतीस दिन कम छिहत्तर वर्ष की आयु मे सीजर का देहान्त हुआ। रोम की शिष्ट सभा (सेनेट) मे उसके प्रति इतना गहरा सम्मान-भाव था कि एक सदस्य ने प्रस्ताव किया कि उसकी अर्थी का जुलूस विजय-द्वार से ले जाया जाय, उसके आगे आगे "विजय" की मूर्त्ति हो, और कुलीन घरों के बच्चे और बच्चियाँ श्मशान-गीत गाती चले। दूसरे ने प्रस्ताव किया कि उस दिन सब लोग सोने की अँगूठी उतार कर लोहे की पहने। तीसरे ने कहा, उसकी अस्थियाँ प्रधान प्रधान विद्यापीठों के पुरोहित इकट्ठी करें। परन्तु बाद को यही निश्चय हुआ कि उसके सम्मान में मिताचार का उल्लङ्घन न किया जाय। तब शिष्ट सभा के सदस्य उसके शव को कन्धों पर उठाकर केम्पस मार्टियस मे ले गये और वहाँ उसे जला दिया गया। एक प्रतिष्ठित मनुष्य ने शपथ-पूर्वक कहा कि मैने आगस्टस की आत्मा चिता मे से उठकर स्वर्ग को जाती देखी है। उच्च कुल के अतीव प्रख्यात व्यक्तियों ने नङ्गे पैर और अन्तर्वास खोले हुए उसका अस्थि-चयन करके एक समाधि-मन्दिर मे रख दिया।

उत्तर-दान के रूप में सीज़र रोमन-जनता, सैनिकों और दूसरे लोगों के लिए विपुल धन-राशि छोड़ गया।

दान्ते का बीएटीरस से मिलन

दान्ते

डाँटे अलिगहीरी

सन् १२६५ से सन् १३२१ तक

[श्रीयुत गिओवन्नी बोकासियो (Giovanni Boccaccio, सन् १३१३ से १३७५ तक) के लैटिन लेख के आधार पर]

डाँटे का जन्म इटली के फ्लोरेंस नगर में हुआ था। जिस प्रकार आजकल के धनी लोग अपनी सारी जवानी आलस्य और विषय-भोग में बिताते हैं, उसी प्रकार डाँटे ने अपना समय माता की गोद मे लोरियाँ लेने में नहीं बिताया, वरन् लड़कपन से ही वह कलाओं के अध्ययन में लगा रहा। इससे वह उनका विशेषज्ञ हो गया। उसने अनुभव किया, जैसा कि कई मूर्ख समझे हुए हैं, कि काव्य-रचनाएँ निरर्थक और कल्पित कहानी-मात्र नहीं, वरन् उनके नीचे ऐतिहासिक और दार्शनिक सत्य के मधुरतम फल छिपे हैं, इसलिए कवियों की कल्पनाएँ इतिहास तथा नैतिक एवं प्राकृतिक दर्शन-शास्त्र के बिना भली भाँति समझ मे नहीं आ सकतीं।

अध्ययन के लिए, विशेषतः चिन्तनात्मक अध्ययन के लिए,—जिसमें डाँटे ने अपने को पूर्ण रूप से लगा रक्खा था—सामान्यतः एकान्त, निश्चिन्तता और मन की शान्ति की आवश्यकता

होती है। परन्तु शान्ति और एकान्त के बजाय, जीवन के आरम्भ से लेकर मरने के दिन तक, डाँटे को प्रेम का प्रचण्ड और असह्य विकार, भार्या, पारिवारिक तथा सार्वजनिक चिन्ताएँ, निर्वासन और दण्ड था। वे विशेष चिन्ताएँ जो आवश्यक रूप से इनमें अन्तर्भूत रहती हैं इनसे अलग रहीं।

जिस ऋतु मे सृष्टिकर्त्ता अपनी कृपा से वसुन्धरा देवी को सोलहों शृङ्गारों से सजाता है, और हरे पत्तों मे बिखरी हुई विविध प्रकार की कुसुमावली से वह मुस्कराने लगती है, फ्लोरेंस के नर-नारी अपने-अपने पड़ोस में मिलकर उत्सव मनाया करते थे। फोलको पोर्टिनारी नाम के एक प्रतिष्ठित सज्जन ने मई मास के पहले दिन अपने पड़ोस के लोगों को उत्सव के लिए अपने यहाँ बुलाया। उस उत्सव मे, पिता के साथ, डाँटे भी गया। वहाँ वह अपनी हमजोली के दूसरे लड़के-लड़कियों के साथ खेलने लगा। इस समय उसकी आयु नौ वर्ष की थी।

उस बालक-मण्डली मे उपर्युक्त फोलको की छोटी सी पुत्री बीएट्रिस भी थी। लड़की की आयु कोई आठ वर्ष की होगी। अपनी आयु की दृष्टि से वह बहुत ललित, अपनी क्रियाओं मे वड़ी प्रिय और सौम्य, और इस अल्पायु मे बालक को जितना होना चाहिए उससे कहीं अधिक अपने शब्दों में शान्त और गम्भीर थी। उसकी मुखाकृति बहुत कोमल और सुनिर्मित थी। सौन्दर्य के अतिरिक्त उसमे इतना लावण्य भरा था कि बहुत से

लोग उसे एक सुरवाला समझते थे। डाँटे के मन मे उसके प्रति प्रेम का भाव उत्पन्न हो गया। यद्यपि वह अभी बच्चा ही था, तो भी उसने उसकी चारु मूर्ति को अपने हृदय मे इतनी ममता के साथ ग्रहण किया कि उस दिन से लेकर वह जब तक जीता रहा, उसको अपने हृदय से न निकाल सका।

नहीं कह सकते कि वह स्नेह क्या था, परन्तु यह बात निश्चित रूप से सत्य है कि डाँटे बाल्यकाल मे ही प्रेम का उत्तम पुजारी बन गया था। हो सकता है कि प्रकृतियों या शीलों की एकतानता ने, या आकाश के विशेष प्रभाव ने वहाँ काम किया हो। जैसा कि हमे ज्ञात है, उत्सवों मे सङ्गीत की मधुरता, व्यापक प्रसन्नता, और स्वादिष्ट भोजन के कारण न केवल युवकों के वरन् परिपक्व अवस्था के मनुष्यों के भी मन फैल जाते हैं और जो भी वस्तु उन्हें अच्छी लगती है उसी मे उनकी प्रवृत्ति फँस जाने की होती है। परन्तु युवावस्था की घटनाओं को अलग रखकर भी, प्रेम की अग्नि-शिखा उसकी आयु के साथ साथ इतनी बढ़ती गई कि बीएट्रिस के दर्शन के सिवा उसे किसी दूसरी वस्तु से प्रसन्नता, सुख या शान्ति नहीं मिलती थी। इसलिए दूसरे सब कामों को छोडकर, बडी भारी उत्सुकता के साथ, वह वहीं जाता था जहाँ वह समझता था कि शायद बीएट्रिस के दर्शन हो जायँ, मानो उसके मुखमण्डल और नयनों से ही उसे समस्त सुख और पूर्ण सान्त्वना प्राप्त हो सकती थी। परन्तु, जैसा कि उसने आप लिखा है और

जैसा कि दूसरे भी साक्षी देते हैं, उसका प्रेम बड़ा ही पवित्र था; न तो प्रेमी मे और न उसमे जिससे वह प्रेम करता था, आकृति या शब्द या लक्षण से कभी काम-वासना प्रकट हुई। जिस वर्तमान जगत् से निष्पाप प्रीति का लोप हो चुका है और जो उसको प्रसन्न करनेवाली वस्तु से प्रेम करने का निर्णय करने के पूर्व ही उसे अपनी कामवासना की सामग्री बनाने का इतना अभ्यस्त है, कि अन्यथा प्रेम करनेवाला व्यक्ति एक चमत्कार, वरन् एक बहुत ही दुर्लभ पदार्थ हो गया है, उस जगत् के लिए यह कोई कम अचम्भे की बात नही। यदि ऐसे प्रेम ने इतने दीर्घ काल तक उसके खान-पान, निद्रा और शान्ति मे बाधा डाली तो आप समझ सकते हैं कि उसके पवित्र अध्ययन और उसकी प्रतिभा मे इससे कितना विघ्न पड़ा होगा।

संसार की कोई भी वस्तु स्थायी नहीं। हमारा जीवन भी परिवर्तनशील है। दूसरी असख्य दुर्घटनाओं और सम्भावनाओं का तो कहना ही क्या, एक बहुत अधिक ठण्डी तुच्छ सी चीज़, या हमारे भीतर की गरमी, हमें जीवन से मरण मे पहुँचा सकती है। कुलीनता, धन-सम्पत्ति, यौवन कोई भी वस्तु इससे हमारी रक्षा नहीं कर सकती। परम सुन्दरी बीएट्रिस अपना चौबीसवाँ वर्ष समाप्त कर रही थी जब उस विधाता की इच्छा से, जो सारे जगत् का नियन्ता है, वह इस संसार के दुःखों से मुक्त होकर उस लोक को चली गई जो उसने अपने पुण्य-प्रताप

से लाभ किया था। उसके अनन्त वियोग से डाँटे शोक, दुःख और अश्रुजल के इतने गहरे सागर मे डूब गया कि उसके घनिष्ठ मित्रों और आत्मीय जनों को विश्वास हो गया कि अब केवल मृत्यु ही उसका निस्तार कर सकेगी। वे शीघ्र ही उसकी मृत्यु की आशा करने लगे, क्योंकि वह न तो किसी की सान्त्वना पर कान देता था और न अपने आराम की परवा करता था। दिन रातों के समान थे और रातें दिनों के समान। एक घण्टा भी तो दीर्घ निःश्वास, आर्त्तनाद और अविरल अश्रुधारा के बिना न बीतता था। उसके नेत्र उछलते पानी के दो झरने जान पड़ते थे, यहाँ तक कि कई लोगों को आश्चर्य होता था कि रोने के लिए वह इतनी आर्द्रता कहाँ से लाता है।

परन्तु हम देखते हैं कि दीर्घ अनुभव से दुःख का सहन करना भी सुगम हो जाता है, और इसी प्रकार सभी वस्तुएँ समय पाकर घटती और समाप्त हो जाती हैं। कई मास बीत जाने पर ऐसा जान पडा कि डाँटे अब विना अश्रुपात किये बीएट्रिस की मृत्यु का स्मरण करने के योग्य हो गया है।

डॉटे के सम्बन्धियों ने देखा कि उसको पूर्ण रूप से शोक-मुक्त करना यद्यपि कठिन है तथापि उसके शोक को हलका करना सम्भव है। उन्होंने मन्त्रणा की कि उसका विवाह कर दिया जाय। उन्होंने सोचा कि विनष्ट रमणी उसके विषाद का कारण हुई है, इसलिए नव-प्राप्त नारी शायद उसके सुख का

अवसर हो जाय। पहले तो उन्होंने एक ऐसी लड़की ढूँढ़ी जो उसकी अवस्थाओं के अनुकूल थी; फिर यह बात डाँटे पर प्रकट की और साथ ही ऐसी युक्तियाँ दीं जो उनको अतीव विश्वासजनक जान पड़ती थी। बहुत वाद-विवाद के उपरान्त उसका विवाह हो गया।

हे अन्ध बुद्धि! हे मलिन प्रज्ञा! हे नश्वर मानवों के निःसार तर्क! कितनी अधिक बार परिणाम तेरी सम्मति के प्रतिकूल होते हैं, और बहुधा अकारण ही नहीं। कौन व्यक्ति उष्णता की अधिकता के मिस मनुष्य को काश्मीर की शीतल सुगन्धित पवन से निकालकर राजपूताने की जलती हुई मरुस्थली मे ले जायगा ताकि शायद वहाँ उसे ठण्डक पड जाय, या सिन्ध से उठाकर शिमले ले जायगा ताकि शायद उसके शरीर मे गरमी आ जाय? कौन चिकित्सक तीव्र ज्वर को अग्नि के द्वारा या हड्डियों की मज्जा में घुसे हुए शैत्य को तुषार या हिम द्वारा निकालने का यत्न करेगा? अवश्य ही केवल वही व्यक्ति ऐसा कर सकता है जो प्रेम के शोक को नई दुलहिन द्वारा कम करने का विचार करता है। जो ऐसा करने की आशा करते है वे न तो प्रेम के स्वरूप को जानते हैं और न इस बात को कि यह किस प्रकार प्रत्येक दूसरे विकार को अपने साथ जोड़ लेता है। जो व्यक्ति देर तक प्रेम करता रहा है यदि उसके हृदय मे इसने दृढ़ता से जड जमा ली है तो फिर वहाँ उपदेश या सहायता कुछ नहीं कर सकती।

वास्तव मे वह व्यक्ति क्या करेगा जो मुझे एक दुःखद विचार से मुक्त करने के लिए उससे भी अधिक दुःसह सहस्रों विचारों मे निमग्न कर देता है। इसके सिवा और कुछ नही कि मेरा दुःख बढ जाय और मैं कामना करने लगूँ कि मैं उसी अवस्था मे फिर लौट जाऊँ जिससे उसने मुझे निकाला था। यह बात हम बहुत से ऐसे मनुष्यो की अवस्था मे होते देखते है जो कष्टों से बच निकलने या छुटकारा पाने के लिए आँखे मीचकर विवाह कर लेते है या दूसरे उनका विवाह कर देते हैं। डाँटे के सम्बन्धियें और मित्रों ने उसे एक भार्या इसलिए दी कि शायद बीएट्रिस के लिए उसका अश्रुपात बन्द हो जाय। इससे उसका रोना तो बन्द हो गया, और शायद वह पहले ही बन्द हो चुका था, परन्तु इसमे सन्देह है कि इससे उसके प्रेम की ज्वाला भी बुझ गई; वह तो विवाह करके और भी नवीन कष्टों में फँस गया।

डाँटे रात को देर तक बैठा अध्ययन किया करता था। जितनी बार उसकी इच्छा हो वह राजाओं, सम्राटों और अन्य उन्नत राजपुत्रों के साथ बातचीत करता था, दार्शनिकों के साथ विवाद करता था, और अतीव रुचिर कवियों के साथ आनन्द लेता था; दूसरों की कष्ट-कथाओं को सुनकर वह अपनी व्यथा को शान्त किया करता था। परन्तु अब उसे इन विश्रुत साथियों की सङ्गति से उसी समय अलग होना पड़ता था जब उसकी नई गृहिणी चाहती कि वह उसकी सहेलियों से बात-चीत करे, और

उनके साथ उसे, अपनी इच्छा के विरुद्ध, न केवल सहमत ही होना पडता था वरन् उनकी प्रशंसा भी करनी पड़ती थी, नहीं तो उसके लिए आराम से रहना मुश्किल हो जाता था। पहले उसका स्वभाव था कि जब गँवार लोगों से वह ऊब जाता था तो किसी एकान्त स्थान मे चला जाता था, और वहाँ सोचता था कि कौन आत्मा आकाश को चला रही है, प्राणियों मे जीवन कहाँ से आता है, कार्यों के कारण क्या हैं; ऐसे अनोखे आविष्कारों का पहले से अनुमान करता या किसी ऐसी चीज़ की रचना करता जो उसकी मृत्यु के उपरान्त आनेवाली पीढ़ियों मे उसके नाम को जीवित रक्खेगी। परन्तु अब अपनी इस नवीन गृहिणी के इच्छानुसार, उसे न केवल इन मधुर चिन्तनों से ही पृथक् हो जाना पडा, वरन् उसके लिए अनुपयुक्त ऐसे व्यक्तियों के साथ रहना आवश्यक हो गया जो ऐसी बातों के सर्वथा अनुपयुक्त थे। पहले वह सुख-दुःख मे हँसने-रोने, आहें भरने और गाने मे स्वतंत्र था, परन्तु अब वह इसका साहस नहीं कर सकता था, क्योंकि उसे अपनी गृहिणी के सामने न केवल बड़ी बड़ी बातों का ही कारण बताना पड़ता था, वरन् छोटे से छोटे निःश्वास का भी समाधान करना पड़ता था कि यह कैसे उत्पन्न हुआ, किधर से आया और किधर को गया। कारण यह कि वह उसकी प्रसन्नचित्तता का अर्थ किसी दूसरी स्त्री के प्रति उसका प्रेम और उसके उद्वेग का अर्थ अपने प्रति घृणा समझती थी। ओफ, ऐसी शङ्काशील स्त्री के साथ रहना, एव

वार्तालाप करना और अन्ततः वृद्ध होकर मर जाना कितना श्रान्तिकर है। क्रुद्ध नारी के बराबर कोई भी पशु क्रूर नहीं होता। कोई भी पुरुष अपने को सुरक्षित नहीं समझ सकता जो अपने को ऐसी स्त्री के हाथ मे सौंप देता है जो समझती है कि मेरे पास क्रुद्ध होने के लिए कारण है।

डाँटे को अन्त मे तङ्ग आकर स्त्री से अलग हो जाना पड़ा, उस स्त्री से जो उसके शोक मे सान्त्वना देने के लिए उसे दी गई थी। फिर वह कभी उसके पास नहीं गया और न उसने उसे अपने पास आने दिया। हाँ, वह उससे सात बच्चों का बाप अवश्य बन चुका था। इसका अर्थ यह न समझा जाय कि मैं पुरुषों को विवाह न करने का उपदेश दे रहा हूँ। इसके विपरीत, मैं इसकी सिफारिश अवश्य करता हूँ, परन्तु सबके लिए नहीं। दार्शनिकों को चाहिए कि विवाह को धनवान् मूर्खों, राजपुरुषों और कृषकों के लिए छोड दें, और आप तत्त्वज्ञान मे ही आनन्द प्राप्त करे, जिससे अच्छी दुलहिन और दूसरी नहीं। डाँटे के समय मे फ्लोरन्स के अधिवासी बड़ी बुरी तरह से दल-बन्दियों मे फँसे थे। उनके दो दल थे। चतुर और सतर्क नेताओं की चालाकियों से प्रत्येक दल बड़ा प्रबल था। इसलिए कभी एक दल का शासन हो जाता था और कभी दूसरे का। जो दल हार जाता था वह बड़ा दुखी रहता था। डाँटे अपने प्रजातन्त्र की दलबन्दी को मिटाकर एक कर देना चाहता था। इसके लिए उसने अपनी सारी प्रतिभा, सारी कला और सारा अध्ययन

लगा दिया। उसने समझदार नागरिकों को समझाया कि अनैक्य से बड़ी से बड़ी चीज़ भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, और एकतानता से छोटी से छोटी चीज़ की भी अनन्त वृद्धि होती है। परन्तु जब उसने देखा कि मेरी बात का उनके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं होता और मेरा परिश्रम निष्फल हो रहा है, और यह विश्वास करके कि विधाता का विधान ही ऐसा है, उसने पहले तो सभी सार्वजनिक कामों को पूर्णतः छोड़कर व्यक्तिगत जीवन बिताने का सङ्कल्प किया, परन्तु बाद को कीर्ति की माधुरी ने, जन-साधारण के खोखले अनुग्रह ने, और प्रधान नागरिकों की प्रेरणाओं ने उसे खींच लिया। इनके साथ ही उसका अपना भी विश्वास था कि सार्वजनिक कामों में बड़ा बनकर मैं अपने नगर की जितनी भलाई कर सकता हूँ उतनी उनसे बिलकुल पृथक् रहकर अपनी व्यक्तिगत स्थिति मे नहीं कर सकता।

हे मानवी गरिमा की उत्कट लालसा, तेरी शक्ति उससे कितनी अधिक है जितनी कि वह मनुष्य जो तुझको नहीं जानता विश्वास कर सकता है! यह मनुष्य, जो परिपक्व अवस्था का था, जिसका पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा दर्शनशास्त्र के पवित्र अङ्क मे हुई थी, प्राचीन और अर्वाचीन राजाओं का पतन, साम्राज्यों, प्रान्तों और नगरों का विध्वंस और भाग्य के उग्र आक्रमण जिसके नेत्रों के सामने थे, तेरे जादू से अपने को बचाने की शक्ति अथवा ज्ञान से शून्य था।

डाँटे ने तब सार्वजनिक पद के भागते हुए यश और अलीक कीर्ति के पीछे चलने का निश्चय किया। यह देखकर कि मैं अकेला एक तीसरे दल को नहीं चला सकता, जो आप न्याय पर रहते हुए, दूसरे दो के अन्याय को गिराकर उनको एक में मिला देगा, उसने अपने को उस दल मे मिला दिया जिसमे उसे सबसे अधिक न्याय और विवेक देख पड़ता था। वह सदा उसी दल के लिए काम करता था जिसे वह अपने देश एवं उसके अधिवासियो के लिए हितकर और उपकारक मानता था। परन्तु मनुष्य सोचता कुछ है और विधाता कर देता कुछ और है। कोई न्यायसङ्गत कारण न होने पर भी घृणा और द्वेष उत्पन्न हो गया और दिन पर दिन अधिक बढ़ने लगा; यहाँ तक कि लोग अनेक बार बड़ी गड़बड़ मे शस्त्र लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े। वे अग्नि और खड्ग से इस कलह का अन्त करना चाहते थे और क्रोध में इतने अन्धे हो रहे थे कि यह नहीं देखते थे कि इस लडाई से हम आप ही बुरी तरह से नष्ट हो जायँगे।

इस युद्ध मे डाँटे के दल की हार हुई और नेता लोग नगर छोड़कर भाग गये। विजयी दलवालों ने निर्वासित नेताओं के घर लूट लिये और नगर को पुनः सङ्गठित करके भागे हुए नेताओं को प्रजातन्त्र के प्रधान शत्रु बताकर सदा के लिए निर्वासित कर दिया। डाँटे को भी देश-निकाला मिला।

यह पुरस्कार था जो डाँटे को अपने देश से प्रेम रखने के लिए मिला! यह पुरस्कार था जो उसे नगर के विरोध को शान्त

करने का उद्योग करने के लिए मिला। इससे प्रकट है कि जनता का अनुग्रह सचाई से कितना दूर है और उस पर कितना कम भरोसा किया जा सकता है। वह जिसमे थोड़ी देर पहले, जनता की प्रत्येक आशा, नगर-निवासियों की सारी ममता, लोगों की प्रत्येक शरण रक्खी हुई जान पड़ती थी, किसी यथार्थ हेतु से नहीं, किसी अपराध या पाप के कारण नहीं, सहसा उन्मत्तवत् भगाकर अखण्डनीय निर्वासन मे भेज दिया जाता है, और यह काम उस कीर्ति द्वारा किया जाता है जो कुछ ही समय पूर्व उसकी प्रशंसा से आकाश को निनादित करती सुनी जाती थी। उसके सद्गुणों की अमर स्मृति में यही सङ्ग-मरमर की मूर्त्ति खडी की गई! इस संसार में लोगों की कृपा से बढ़कर और कोई भी वस्तु अस्थायी नहीं है। जो आशा मनुष्य को लोकप्रिय बनने के लिए उत्साहित करती है उससे बढ़कर कोई भी आशा पागल नही और कोई भी परामर्श अधिक मूर्खता-पूर्ण नहीं। इसलिए मनुष्य को अपना मन उस भगवान् मे लगाना चाहिए जिसके चिरस्थायी नियम मे, जिसकी शाश्वत प्रभा मे, जिसके सच्चे सौन्दर्य में उसकी स्थिरता स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो रही है और जो सब वस्तुओं को विवेकपूर्वक चला रहा है; और इस प्रकार सब अनित्य पदार्थों को छोडकर, धोखे से बचे रहने के लिए, अपनी प्रत्येक आशा को उसी में स्थिर करना चाहिए।

डाँटे इटली को छोड़कर पेरिस पहुँचा। वहाँ पर वह अपना सारा समय दर्शन और ब्रह्मविद्या के अध्ययन मे लगाने लगा।

जो विद्याएँ वह अपने सङ्कट के कारण भूल गया था उनको भी उसने दुबारा ताज़ा कर लिया। जब वह इस प्रकार अध्ययन मे निरत था, पोप पाँचवें क्लीमेण्ट ने लक्सम्बर्ग के काऊँट हेनरी को इटली का राजा विघोषित कर दिया। इटली का कुछ भाग उसे राजा मानने को तैयार न था। इसलिए हेनरी ने उस पर चढाई की। डाँटे ने समझा कि .फ्लोरेन्स में वापस जाने का अब मुझे अच्छा अवसर है। उसने हेनरी को लिखा कि आप पहले .फ्लोरेन्स पर चढ़ाई कीजिए; उसके सर होने पर फिर शेप इटली अपने आप अधीनता स्वीकार कर लेगा।

हेनरी ने .फ्लोरेन्स पर धावा किया परन्तु वह उसे सर न कर सका, और हताश होकर रोम की ओर लौट गया। फिर जल्दी ही उसकी मृत्यु हो गई। इससे डाँटे की आशाओं पर पानी फिर गया। अब वह पेरिस से रोमगना में चला गया और अपने अन्तिम दिन तक वहीं रहा।

रोमगना का राजा वडा गुणग्राहक और विद्याव्यसनी था। डाँटे का आगमन सुनकर वह वहुत प्रसन्न हुआ और उसके स्वागत के लिए स्वयं गया। डाँटे वड़ी प्रसन्नता से उसकी राजधानी रेवन्ना मे चला गया। राजा ने उसका यथोचित सत्कार किया और कवि को उसके जीवन के अन्त तक अपने साथ रक्खा।

डाँटे को अपने प्रधान सङ्कल्प से—पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन से—न तो काम-वासना हटा सकी, न शोकाश्रु, न घरेलू चिन्ताएँ,

न सार्वजनिक पद की लुभावनी कीर्त्ति, न कष्टदायक निर्वासन और न असह्य दरिद्रता ही। इतनी विघ्न-बाधाओं के रहते भी यदि वह अपनी प्रतिभा और अध्यवसाय के प्रताप से इतना यशस्वी हो गया तो यदि अवस्थाएँ उसके अनुकूल होती तो न मालूम वह और कितना अधिक चमकता।

मृत्यु प्रत्येक मनुष्य के साथ लगी है। डाँटे भी इससे न बच सका। अपने छप्पनवें वर्ष के मध्य मे वह रुग्ण हुआ और सितम्बर सन् १३२१ मे उसकी आत्मा पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़ गई।

हमारा कवि मझोले क़द का था। परिपक्वता को पहुँच जाने पर वह थोड़ा झुककर चला करता था। उसकी गति मन्द और मृदुल थी। अपनी प्रौढ़ अवस्था के योग्य वह सादे कपड़े पहनता था। उसकी मुखाकृति लम्बी, नाक तोते जैसी और आँखे कुछ बड़ी थीं। उसके जबड़े बड़े थे और निचला जबड़ा कुछ बाहर बढ़ा हुआ था। उसका रङ्ग कुछ साँवला था। बाल और दाढ़ी घनी, काली और घुँघराली थी। उसके मुखमण्डल का भाव उदास और चिन्ताशील था। एक दिन वेरोना मे, जब कि उसकी रचनाओं की, विशेषतः उसके "नरक" (इनफरनो) नामक प्रहसन की ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी, और अनेक स्त्री-पुरुष उसे देखकर पहचान लेते थे, वह द्वार-मार्ग के सामने से होकर जा रहा था। वहाँ महिलाओं की एक मण्डली बैठी थी। उनमे से एक ने दूसरी से धीरे से कहा,

परन्तु बहुत धीरे से नहीं, क्योंकि डाँटे और उसके साथियों ने उसे सुन लिया—"क्या तुम उस पुरुष को देखती हो जो जब जी चाहे नरक में जाकर वापस आ जाता है और वहाँवालों के समाचार लाता है?" इसके उत्तर मे दूसरी ने भोलेपन से कहा—"तुम वस्तुतः सत्य कहती हो। देखती नहीं हो, नरक की गरमी और धुएँ से उसकी दाढ़ी कैसी चुरमुरी और उसका रङ्ग कैसा काला हो गया है?"

अपने पीठ पीछे कहे गये इन शब्दों को सुनकर, और यह जानकर कि स्त्रियों ने निर्दोष विश्वास के कारण ये वाक्य कहे है, डाँटे बहुत प्रसन्न हुआ, और थोड़ा सा मुस्किराकर, मानो वह स्त्रियों की ऐसी सम्मति से सन्तुष्ट है, चला गया।

क्या घरेलू और क्या सार्वजनिक आचरण दोनों में डाँटे शान्त और सुव्यवस्थित रहता था। विनय और शिष्टता में कोई दूसरा उसकी बराबरी नहीं करता था। खान-पान में वह बहुत ही मिताचारी था। वह नियत समयों पर खाता और आवश्यकता से अधिक नहीं खाता था। जिह्वा की लोलता के वशीभूत हो वह एक ही पदार्थ को अधिक नहीं खा जाता था। वह स्वादिष्ठ पदार्थों की प्रशंसा तो करता था, परन्तु मुख्यतः सादा भोजन ही करता था। जिन लोगों को उत्कृष्ट पदार्थों की प्राप्ति की ही सदा चिन्ता लगी रहती है उनकी वह अपार निन्दा करता था। वह कहता था कि ऐसे लोग जीने के लिए नहीं खाते, वरन् खाने के लिए जीते हैं।

स्वाध्याय मे, और जो भी दूसरा कोई काम डाँटे हाथ में लेता था उसमें, कोई भी दूसरा उससे बढ़कर चौकस न था, यहाँ तक कि उसकी पत्नी और परिवार, जब तक वे उसकी रीतियों के अभ्यस्त नहीं हो गये, उससे बहुत चिढ़ते थे और उसके बाद उन्होंने इस पर ध्यान देना ही छोड़ दिया था। जब तक उससे कोई बात न पूछी जाय तब तक वह बहुत कम बोलता था। और तब भी विचारपूर्वक और ऐसे स्वर मे जो उस विषय के उपयुक्त हो। परन्तु कारण होने पर वह वाग्मिता-पूर्ण धारा-प्रवाह भाषण करता था। उसके बोलने की शैली उत्कृष्ट एवं तत्पर थी। युवावस्था मे उसे गाने-बजाने का बडा शौक़ था। उस समय के सभी उत्कृष्ट गायक उसके मित्र थे। प्रसन्नता की लहर में आकर उसने कई मधुर गीत बनाये थे।

डाँटे ने साधारण लोगों की बोलचाल की भाषा मे अपने को सावधानी के साथ सधाया। इससे न केवल यही कि वह अपने सभी समकालीनों से बढ़ गया, वरन् उसने भाषा को इतना परिमार्जित और सुन्दर बना दिया कि उसके समय के ही अनेक व्यक्ति उसके विशेषज्ञ बनने के लिए उत्सुक नहीं हो उठे वरन् तब से आज तक उत्सुक होते रहे हैं और होते रहेगे। उसे अकेला और लोगों से अलग रहने मे बड़ा आनन्द मिलता था ताकि उसके चिन्तन मे बाधा न पड़े। यदि सङ्गति मे बैठे बैठे उसके मन मे कोई अधिक सुखदायक विचार आ जाता तो फिर चाहे उससे कोई भी बात पूछी जाय वह तब तक उत्तर न देता

था जब तक उस विचार-धारा को वह समाप्त न कर ले या त्याग न दे।

पुस्तक के पाठ मे डाँटे इतना मग्न हो जाता था कि फिर कोई भी समाचार उसे उससे विरत नही कर सकता था। एक दिन वह एक कबाडी की दूकान पर गया। वहाँ उसे एक ऐसी पुस्तक मिली जिसकी तलाश मे वह देर से था। वह वहीं खड़ा खड़ा उसे पढ़ने लगा। इस बीच मे बाज़ार मे से बाजे बजाता, नाचता-कूदता और गाता हुआ जुलूस निकल गया। परन्तु डॉटे ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। वह तीन बजे से छः बजे तक वहीं खडा खड़ा पढता रहा।

इसके अतिरिक्त इस कवि मे आश्चर्यजनक धारणाशक्ति, विलक्षण स्मृति और कुशाग्र बुद्धि थी। एक बार पैरिस में ब्रह्म-विद्या पर एक बडा शास्त्रार्थ हुआ। चौदह विद्वानों ने विभिन्न विषयों पर प्रबन्ध लिखे। डाँटे ने इन सबको क्रम से इकट्ठा कर लिया। उनके लेखकों ने पक्ष और विपक्ष मे जो युक्तियाँ दी थीं उनको उसने उसी क्रम से दुहराया, उनकी सूक्ष्म व्याख्या की और अपनी युक्तियों से उनका खण्डन किया।

डॉटे को यश और कीर्ति की बहुत अधिक चाह थी, शायद इतनी जितनी कि उसके समान भद्र प्रकृतिवाले मनुष्य के उपयुक्त न थी। परन्तु ससार मे कौन इतना आत्म-त्यागी है जिसे कीर्ति की इच्छा न हो? कदाचित् इसी लालसा के कारण वह सबसे बढ़कर कविता पर प्रेम रखता था। कारण यह कि

वह देखता था कि यद्यपि दर्शन-शास्त्र माहात्म्य मे सबसे बढ़कर है, तो भी इसकी विशिष्टता केवल थोड़े से लोगों तक ही पहुँचाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त संसार मे पहले ही बहुतेरे प्रसिद्ध दार्शनिक हैं। इसके विपरीत, कविता प्रत्येक के लिए अधिक स्पष्ट एवं रुचिर है, और कवि लोग है भी बहुत दुर्लभ। इसलिए उसने कविता के द्वारा अपना यश-सौरभ दिग्दिगन्त मे फैलाने का निश्चय किया।

इतने सद्‌गुणों और इतनी विद्वत्ता के साथ साथ इस अद्भुत कवि में व्यभिचार की मात्रा भी बहुत थी, सो भी न केवल युवावस्था मे वरन् प्रौढ़ अवस्था में भी। उसके इस दुर्गुण की प्रशंसा तो की ही नहीं जा सकती, उपयुक्त रीति से इसे क्षमा भी नहीं किया जा सकता। परन्तु कौन मर्त्य इतना निष्पाप और समदर्शी है जो इतने से ही उसे कलङ्कित ठहरायगा ? स्त्रियों की मोहिनी शक्ति, सौन्दर्य, स्वाभाविक कामना, और अनेक दूसरे सद्‌गुण ऐसे हैं जो उनकी ओर से पुरुषों के हृदयों में निरन्तर कार्य करते हैं।

डाँटे अपने प्रसिद्ध काव्य "इनफरनो" (नरक) के पहले सात काण्ड ही लिख पाया था कि उस पर विपत्ति आई और उसे देश-त्यागी होना पड़ा। फलतः उसने अपनी यह रचना और इसी प्रकार के दूसरे सब काम छोड़ दिये, और विविध प्रकार के मित्रों और सामन्तों मे वह कई वर्ष तक अनिश्चित अवस्था मे घूमता रहा।

फ्लोरेन्स से भाग जाने पर डाँटे का कुछ माल तो कृतघ्न और उच्छृङ्खल भीड़ ने लूट लिया था परन्तु उसकी कुछ पेटियाँ शीघ्रता से पवित्र स्थानों मे छिपा दी गई थीं। उन पेटियों में दूसरे ज़रूरी कागज़ों की तलाश करते समय एक व्यक्ति को ये सात काण्ड मिल गये। वह इन्हें पढ़कर बड़ा प्रसन्न हुआ और उठा कर डीनो नामक एक प्रसिद्ध कवि के पास ले गया। वह भी उन्हें पढ़कर कुछ कम प्रसन्न नहीं हुआ; क्योंकि उनकी शैली सुन्दर, परिमार्जित एवं अलङ्कृत थी, और शब्दों के सुन्दर परिधान के नीचे गम्भीर भाव छिपे हुए थे।

वे समझ गये कि यह डाँटे की ही रचना है। उनके मन मे प्रबल लालसा उत्पन्न हुई कि इस अधूरे काव्य को पूरा कराना चाहिए। इसके लिए उन्होंने डाँटे को ढूँढ़ना आरम्भ किया। कुछ खोज के उपरान्त पता लगा कि वह मार्किस मोरूलो के पास है। उन्होंने सातों काण्ड मोरूलो के पास भेज दिये। वह उन्हे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उन्हे डाँटे को दिखाकर पूछा कि क्या आपको मालूम है, यह किसकी रचना है। डाँटे ने झट पहचानकर कहा कि यह मेरी ही है।

इस पर मोरूलो ने कहा कि आपने इसका जितना उच्च आरम्भ किया है उसके उपयुक्त ही यदि इसकी समाप्ति करके इसे आप पूरा कर दे तो मुझे बडी प्रसन्नता हो। तब डाँटे ने आगे लिखना आरम्भ कर दिया। उसके काम में अनेक विघ्न-बाधाएँ आईं, जिनके कारण वह निरन्तर इस कार्य मे न लग

सका। वह जो कुछ लिखता था, साफ करके अपने मित्र मेसर केन को भेजता जाता था। इस प्रकार उसने अन्तिम तेरह काण्डों के सिवा शेष सारी पुस्तक उसे भेज दी। इतने मे उसका देहान्त हो गया। उसके पुत्रों और शिष्यों ने उसके कागज-पत्रों मे बहुतेरा ढूँढा कि अन्त के काण्ड मिल जायँ, परन्तु वे न मिले। इस प्रकार ऐसी उत्तम पुस्तक के अपूर्ण रह जाने पर सबको खेद हुआ।

लोगों ने डाँटे के दोनों पुत्रों—जकोपो और पाइरो—को, जो कवि थे, प्रेरणा की कि अपने पिता की इस रचना को पूर्ण कर दें। इस बीच मे जकोपो को स्वप्न हुआ कि डाँटे ने पुस्तक को समाप्त कर दिया था और अन्त के तेरह काण्ड अमुक स्थान मे छिपाये रक्खे हैं।

जकोपो एक और व्यक्ति को साथ लेकर वहाँ पहुँचा। वहाँ उन्हे एक आले मे कुछ कागज़ मिले। उन पर फफूँदी चढ़ी हुई थी। यदि कुछ दिन और वे वहाँ पड़े रहते तो नष्ट हो जाते। उनको साफ करके देखा गया तो मालूम हुआ कि वे वही तेरह काण्ड है जिनकी इतनी तलाश हो रही है। उन्होंने उनकी साफ नकल करके मेसर केन के पास भेज दी। इस प्रकार वह काव्य सम्पूर्ण हो पाया।

यह यशस्वी मनुष्य जितना समय दीर्घ निःश्वासों, करुण अश्रुओं, निजी और सार्वजनिक चिन्ताओं और प्रतिकूल दैव के विविध वढ़ाव-घटाव से—ये काम परमेश्वर और मनुष्य की

दृष्टि में उतने बुरे नहीं जितने कि छल, कपट, झूठ, डकैती और विश्वासघात, जो अधिकांश मनुष्य आज कर रहे हैं, और विभिन्न रीतियों से केवल एक ही लक्ष्य पर, अर्थात् धनवान् बनने पर, पहुँचने की चिन्ता में हैं, मानों सारा कल्याण, सारा यश और सारा आनन्द, इसी एक पर आश्रित है—बचा सकता था वही साहित्य-सेवा मे लगाता था। फिर भी उसने कई उत्तमोत्तम रचनाएँ संसार को दीं।

जीन बेपटिस्ट पोक्वीलिन मोलियर

सन् १६२२ से १६७३ तक

[वालटेअर (१६६४—१७७८) के फ्रेंच लेख के आधार पर]

मोलियर का जन्म सन् १६२२ मे पेरिस नगर में हुआ था। चौदह वर्ष की आयु तक वह अपने माता-पिता की दूकान मे काम करता रहा। वहाँ उसने दूकान के काम और थोडा सा लिखने-पढ़ने के सिवा और कुछ न सीखा। उसके माता-पिता ने उसे राजसभा मे काम ले दिया। परन्तु उसकी प्रतिभा उसे किसी दूसरी ओर लिये जा रही थी। कहते हैं कि जिन लोगों ने ललित कलाओं मे नाम कमाया है उन सब ने अपने माता-पिता की रुकावट के रहते हुए कमाया है और प्रकृति ने अपने को नियमानुसार शिक्षा से सदा अधिक प्रबल सिद्ध किया है।

पोक्वीलिन का एक दादा था। उसे नाटक से बड़ा प्रेम था। वह कभी-कभी पोते को भी अपने साथ ले जाया करता था। बहुत छोटी आयु में लड़के को अपने व्यवसाय से बडी घृणा हो गई। अध्ययन की ओर उसकी रुचि बढ़ने लगी। उसने अपने दादा पर स्कूल में भेजवा देने के लिए जोर डाला। अन्त को उसके पिता ने उसे एक बोर्डिङ्ग स्कूल मे भरती करा दिया। परन्तु उसने यह काम बड़ी हिचकिचाहट के साथ किया, क्योंकि

मोलियेर

वह समझता था कि पढ़ जाने से मेरा पुत्र सफल व्यापारी बनने के अयोग्य हो जायगा।

उन दिनों फ्रांस में नाटक पनपना आरम्भ हुआ था। नाटकीय साहित्य जब सामान्य कोटि का हो तो लोग उससे बहुत घृणा करते हैं। परन्तु अपने पूर्ण रूप में यह राज्य की कीर्ति को बढ़ाता है। सन् १६२५ से पहले पेरिस मे अभिनेताओं के स्थायी दल नहीं थे। केवल थोड़े से घटिया दर्जे के अभिनेता नगर-नगर हार्डी, मोण्टक्रस्टियन या बल्थजर बारो के नाटक खेलते फिरते थे। ये लेखक अपनी कृतियाँ इन दलों के पास दस क्राउन में बेच देते थे।

मोलियर ने पहला नियमपूर्वक पञ्चाङ्की नाटक सन् १६५८ मे ल्योन मे लिखा। यह ला इटोरडी नाम का एक प्रहसन था। इसके बाद उसने "रूठा प्रेमी" (Le Dépit amoureux) और "अमूल्य उपहास्य" (Les Precieuses Ridicules) नाम के नाटक लिखे। पिछले प्रहसन मे उसने प्रान्तिक श्रीमतियों की खिल्ली उड़ाई। इसके बाद उसने नगर और राजसभा की मूर्खताओं की हँसी उडाने का विचार किया। इस समय उसकी आयु चौंतीस वर्ष की थी। किसी भी लेखक के लिए बहुत छोटी आयु मे नाटक-रचना मे सफलता लाभ करना कठिन है, क्योंकि इसके लिए संसार एवं मनुष्य-हृदय के विस्तृत ज्ञान की आवश्यकता होती है।

सन् १६५८ से १६७३ तक, पन्द्रह वर्ष की अवधि मे ही, मोलियर ने अपने सारे नाटक लिखे। इनकी संख्या तीस है।

उसकी कामना दुःखान्त नाटक खेलने की भी थी, परन्तु इस क्षेत्र मे उसे सफलता नहीं हुई।

एक सर्वोत्तम अभिनेता की स्त्री ने मोलियर के शरीर का निम्नलिखित वर्णन दिया है:—"वह न तो वहुत मोटा था और न वहुत पतला; नाटे की अपेक्षा वह लम्बा अधिक था। उसका प्रकार भद्र और टाँगे सुडौल थीं। वह एक विशेष गुरुता के साथ चलता था। उसका रूप वड़ा ही गम्भीर था। उसकी नाक बड़ी थी और ऐसा ही उसका मुँह था। उसके होंठ मोटे थे। उसकी रङ्गत कुछ साँवली थी। उसकी भौंहे काली और घनी थीं, और जिस ढङ्ग से वह उन्हे हिलाता था उससे उसकी मुखभङ्गी उत्कृष्ट रूप से हास्यजनक हो जाती थी। अपने व्यक्तिगत चरित्र में वह नम्र, उपकारशील और उदार था। उसे ज़ोर-ज़ोर से भाषण करने का वड़ा शौक था। जव वह किसी मण्डली में अपना नाटक पढ़कर सुनाता तो वह चाहता कि श्रोतागण अपने वच्चों को भी साथ लाये ताकि वह उनके अपूर्वचिन्तित भाव से अपने प्रभाव का निर्णय कर सके।"

पेरिस-वास के दिनों में मोलियर ने वहुत से मित्र वना लिये, परन्तु इसके साथ ही उतने ही शत्रु भी। जनता को सर्वोत्तम प्रकार के सुखान्त नाटक का अभ्यस्त वनाने मे, उसने उनको सिखलाया कि कठोरता के साथ उसकी रचनाओं की जाँच करे। जो दर्शक दूसरे लेखकों के सामान्य नाटकों की प्रशंसा करते नहीं थकते थे वे मोलियर की छोटी सी त्रुटि पर भी कड़ी आपत्तियाँ

उठाते थे। लोग हमारा निर्णय उस प्रत्याशा के अनुसार करते हैं जो हमने उनमे उत्पन्न कर दी है। जनता के द्रोहभाव के अतिरिक्त, किसी यशस्वी लेखक की छोटी से छोटी त्रुटि भी अच्छी कृति को विफल बनाने के लिए पर्याप्त होती है।

मोलियर के निर्दय शत्रु थे, विशेषतः उस काल के घटिया दर्जे के लेखक और उनके दुष्ट गुट। उसने धर्मात्मा लोगों में भी अपने विरोधी उत्पन्न कर लिये थे। वे उस पर कलङ्कजनक पुस्तकें लिखने का आरोप करते थे। उस पर अपराध लगाया गया कि उसने अपने नाटकों के पात्रों से शक्तिशाली व्यक्तियों का भण्डाफोड किया है, यद्यपि उसने साधारण बुराइयों को मनुष्य-समाज की निन्दा के लिए दिखलाने के सिवा और कुछ नहीं किया था। यदि राजा उसकी रक्षा न करता तो इन आरोपों के परिणाम-स्वरूप उसे दण्ड भोगना पड़ता।

मोलियर का राजा पर कितना प्रभाव था, इसका पता इस बात से लग जाता है कि मोलियर ने अपने चिकित्सक के पुत्र को पादरी का पद ले दिया। एक दिन मोलियर राजा के साथ भोजन कर रहा था। राजा ने पूछा—"आपके पास एक डाक्टर है। वह आपका क्या काम करता है?" मोलियर ने उत्तर दिया—"महाराज, हम इकट्ठे मिलकर बात-चीत किया करते हैं; वह मेरे लिए औषध की व्यवस्था करता है। मै उसका सेवन नहीं करता और चङ्गा हो जाता हूँ।"

मोलियर अपने धन का बड़ा अच्छा और कीर्तिकर विनियोग करता था। वह अतीव मान्य व्यक्तियों का, उन लोगों का जिनको भौतिक आनन्द और जिनको बौद्धिक आनन्द प्राप्त थे, आतिथ्य-सत्कार किया करता था। देहात मे उसका एक घर था। अपने व्यवसाय की थकावट दूर करने के लिए वह वहीं चला जाता था। ग्रन्थ-रचना का काम, जितना साधारण लोग समझते हैं उससे कही अधिक कठिन होता है।

मोलियर की वदान्यता दूसरे लोगों के केवल दान से कहीं अधिक बढ़कर थी। वह बहुमूल्य उपहारों द्वारा उन कङ्गाल लेखकों को बहुधा प्रोत्साहित किया करता था जिनमे उसे कोई योग्यता दीखती थी। रेसाइन जैसा नाटककार मोलियर की कृपा से ही फ्रांस को मिला था।

बैरन नाम के एक युवक मे सुखान्त और दुःखान्त दोनों प्रकार का अभिनय करने की उत्कृष्ट योग्यता थी। मोलियर उसका भरण-पोषण अपने पुत्र के समान करता था। एक दिन बैरन ने मोलियर को सूचना दी कि एक ग्राम्य अभिनेता, जो दरिद्रता के कारण आप नहीं आ सकता, थोड़ा सा ऋण इसलिए माँगता है जिसमें वह आपकी मण्डली मे सम्मिलित हो सके। मोलियर ने बैरन से पूछा कि आपकी राय मे मुझे उसको कितना देना चाहिए। बैरन ने तत्काल उत्तर दिया—"चार रुपये।" मोलियर बोला—"अच्छा, चार रुपये मेरी ओर से दे दीजिए। यह बीस रुपये और हैं। ये अपनी

ओर से दे दीजिए।" इसके साथ ही -उसने उसे एक भव्य नाटकीय परिच्छद भी दिया।

मोलियर की एक और व्यक्तिगत विशेषता भी उल्लेखनीय है। एक दिन उसने एक भिखमंगे को भिक्षा दी। कुछ देर बाद वह भिखमंगा मोलियर के पीछे दौड़ता हुआ आया और बोला—"बाबूजी, आप भूल से मुझे एक अठन्नी दे आये हैं। मैं इसे लौटाने आपके पास आया हूँ।" मोलियर ने कहा—"मित्र, यह एक और लीजिए। हमे भलाई का बदला ऐसे ही देना चाहिए।" इससे साफ़ पता लग जाता है कि उसकी दृष्टि मे जो भी बात आ जाय उस पर सोच-विचार करना उसका स्वभाव था। उसका उद्देश्य प्रकृति का चित्र चित्रण करना था और वह सभी अवसरों पर मनुष्यों मे उसका अध्ययन करता था।

यद्यपि कला-सम्बन्धी सफलताओं और प्रश्रयदाताओं की दृष्टि से वह सुखी और भाग्यवान् था, भाग्य और मित्रों की उस पर समान रूप से कृपा रहती थी, तथापि अपने गार्हस्थ्य जीवन मे वह दुखी था। सन् १६६१ मे उसने एक नवयुवती से विवाह किया। युवती की माता का नाम बेजार्ट और पिता का नाम मोडीन था। परन्तु कहा जाता था कि वास्तव मे मोलियर ही उसका पिता था। यह अपवाद जिस प्रकार फैलाया गया था उसका खण्डन करने के लिए अनेक व्यक्तियों को बड़ा परिश्रम करना पड़ा। यह बात स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो चुकी है

कि इस बेटी के जन्म के पहले मोलियर उसकी माँ को जानता तक न था। उनकी आयु मे इतना बडा अन्तर होने, और तरुणी तथा रूपवती अभिनेत्री के व्यवसाय के साथ जो सन्देह लगे रहते हैं, उन्होंने इस विवाह को दुःखमय बना दिया।

मोलियर यद्यपि दार्शनिक था, तो भी उसे अपने ही घर में उसी प्रकार का मनोभङ्ग, कटुता, यहाँ तक कि उपहास भी सहना पड़ता था जिसकी खिल्ली वह कितनी ही बार नाट्यशाला मे उड़ा चुका था। इसलिए यह बात सत्य है कि जो लोग बुद्धि के कारण दूसरों से श्रेष्ठ होते हैं, वे अपनी दुर्बलताओं मे प्रायः सदैव उनके सदृश होते हैं। वास्तव में मनुष्य को बुद्धि के कारण ही अपने को दूसरों से ऊँचा नहीं समझने लग जाना चाहिए।

मोलियर का अन्तिम नाटक "वहमी रोगी" (Le Malade imaginaire) था। यह हिन्दी मे भी छप चुका है। कुछ काल से मोलियर के फेफड़े मे दोष आ गया था और कभी-कभी खाँसी के साथ रक्त निकलता था। इस नाटक के तीसरे खेल के अवसर पर उसकी अवस्था पहले से भी बहुत ख़राब थी। उसे अभिनय न करने का परामर्श दिया गया; परन्तु उसने नहीं माना। अभिनय उसकी शक्ति से बाहर था। इसी उद्योग के कारण उसके प्राण गये। वह अभिनय कर रहा था कि उस पर ऐंठन का दौरा हो गया। मरणासन्न दशा में उसे उठाकर घर लाया गया। दो ननों (ईसाई भिक्षुणियों) की गोद मे, १७ फरवरी १६७३ को, तिरपन वर्ष की आयु मे, उसका देहान्त हो गया।

लोग मोलियर को केवल अभिनेता के रूप में ही पहचानते थे। वे नहीं जानते थे कि वह अपने क्षेत्र मे दार्शनिक, लेखक और एक महापुरुप भी है। अर्थी उठाने के दिन उसके घर के द्वार के सामने बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हो गई। तब मोलियर की विधवा को विवश होकर खिडकी मे से उनके लिए रुपया-पैसा फेंकना पडा। तभी वे नराधम, जो अज्ञता के कारण अन्त्येष्टि-कर्म मे गड़बड मचाते, महापुरुप की अर्थी के पीछे सम्मान-भाव से गये।

मोलियर के उपयुक्त रीति से दफनाये जाने मे जो कठिनाई हुई, और जीवन में उसे जो अन्याय सहन करने पड़े, उनसे प्रेरित होकर पीरी बौहौर्स नाम के एक प्रसिद्ध व्यक्ति ने उसके लिए यह स्मृति-लेख रचा :—"आपने राजसभा और नगर का सुधार किया, परन्तु आपको क्या पुरस्कार मिला? फ्रान्सीसी लोगों को एक दिन अपनी कृतघ्नता के लिए लज्जित होना पडेगा। उनको एक अभिनेता की आवश्यकता थी जो उनके निमित्त अपनी कीर्ति तथा प्रतिभा का प्रयोग करे। परन्तु महाशय, जिन बुराइयों को आपने ऐसा अच्छा चित्रित किया है, उनमे यदि आप स्वदेश-बन्धुओं की अकृतज्ञता भी बढ़ा देते तो आपकी कीर्ति मे रत्ती भर भी कमी न आती!"

बरूच (बेनीडिक्ट) डो स्पिनोज़ा

सन् १६३२ से १६७७ तक

[जीन मेक्सीमिलियन लूकस (१६४०—१६६७) के
फ्रेञ्च लेख के आधार पर]

यद्यपि हमारी शताब्दी अतीव प्रबुद्ध है, तो भी यह दूसरे युगों की अपेक्षा अपने महापुरुषों के प्रति अधिक समदर्शी नहीं, और यद्यपि इसने उनसे सबसे अधिक लाभ तथा उपकार पाये हैं तो भी यह ईर्ष्या से या अज्ञता से उनकी प्रशंसा सहन नहीं कर सकती। आश्चर्य है कि जो व्यक्ति उनके जीवन-वृत्तान्त लिखना चाहता है उसे अपने को छिपाकर रखना पड़ता है, मानो वह कोई अपराध कर रहा हो। यह बात विशेष रूप से उन महापुरुषों के सम्बन्ध में सत्य है जिन्होंने असामान्य रीतियो से ख्याति प्राप्त की है और जिनको लघुचेतस् लोग समझ नहीं सकते। विचारों का सम्मान होना चाहिए, चाहे वे असङ्गत और हास्यास्पद ही क्यों न हों। इसे प्रायः सब कोई स्वीकार करते हैं। परन्तु वे इस बात की ओट मे अपनी अज्ञता की रक्षा करते हैं। इस प्रकार वे विशद विचार, वरन् स्वयं सत्य का ही बलिदान कर डालते है।

स्पीनोज़ा

बरूच डी स्पिनोज़ा योरप के अतीव सुन्दर नगर एम्सटर्डम मे एक बहुत दरिद्र माता-पिता के यहाँ उत्पन्न हुआ था। उसका पिता यहूदी और पुर्तगाल का रहनेवाला था। जिन साधनों से उसका पुत्र अपने व्यवसाय में सफल हो सकता था उनके जुटाने में असमर्थ होने से, उसने उसे इब्रानी साहित्य सिखलाने का निश्चय किया। परन्तु स्पिनोज़ा जैसे प्रखर-बुद्धि युवक को यह काम पूरी तरह से नियुक्त न रख सका। पन्द्रह वर्ष की आयु में वह ऐसे ऐसे प्रश्न उठाने लगा जिनका समाधान योग्य से योग्य यहूदो भी न कर सकता था। यद्यपि इतनी छोटी आयु मे किसी में इतना विवेक नहीं होता, फिर भी उसने ताड़ लिया कि मेरी शङ्काओं से शिक्षक घबरा जाता है। उसके चिढ़ने के डर से, स्पिनोज़ा यों ही बहाना कर देता कि मैं आपके उत्तरों से सन्तुष्ट हो गया हूँ। वह उनको केवल लिख लेता और कहता कि किसी उचित समय पर और उचित अवस्थाओं में मैं इनका उपयोग करूँगा। बाइबिल के सिवा उसे और कुछ पढ़ने को न था। इसलिए वह उसमें शीघ्र ही इतना निपुण हो गया कि उसे किसी भाष्यकार की आवश्यकता न रही। इस विषय पर उसके विचार इतने समझदारी के होते थे कि यहूदी धर्म-पण्डित उसको उत्तर देते समय मूर्ख से जान पड़ते थे। जब उन्हे कोई उत्तर नहीं सूझता था तो वे कह देते थे कि जो लोग नियमों का बहुत कड़ाई से पालन करने को कहते हैं वे धर्म को ठीक नहीं समझते।

स्पिनोज़ा ने देखा कि सत्य के अनुसरण में इस प्रकार का विचित्र व्यवहार किसी काम का नहीं। वह कहता था, "सामान्य लोग सत्य को नहीं जानते। प्रामाणिक से प्रामाणिक ग्रन्थ मे भी, विना शङ्का किये, विश्वास करना, प्राचीनों की भूलों के लिए मर्यादा से अधिक अनुराग प्रकट करना है।"

इसलिए यद्यपि स्पिनोज़ा सत्य को खोजने मे कोई कसर नही रखता था तो भी उसने अपने भीतर से उपदेश लेने का निश्चय किया। बीस वर्ष की आयु के पहले, ऐसी महत्त्व की कल्पना तैयार करने के लिए एक बलवान् हृदय और असाधारण शक्ति चाहिए। अब जब उसने धर्म-ग्रन्थ को नये सिरे से पढ़ना आरम्भ किया, तो उसने उसके अस्पष्ट स्थलों को नग्न कर दिया, उसके रहस्यों को खोल दिया, और मेघों मे से प्रकाश को प्रकट किया, जिनके पीछे—उसे बताया गया था कि—सचाई छिपी पडी है।

बाइबिल के अध्ययन के वाद स्पिनोज़ा ने "तालमद" को भी बार बार ध्यानपूर्वक पढ़ा। क्योंकि इब्रानी भाषा के ज्ञान मे कोई भी उसके बराबर न था, इसलिए उसे इसमे कुछ भी कठिनाई नहीं हुई; परन्तु साथ ही उसे वहाँ कुछ भी ऐसा न मिला जो उसे सन्तुष्ट कर सके। तो भी उसकी विचार-शक्ति इतनी उत्तम थी कि किसी निर्णय का अनुमोदन करने के पूर्व वह अपने विचारों के साथ कोई अनुमान करने से बचता था।

स्पिनोज़ा का गुरु मोण्टीरा नाम का यहूदी बड़ा विद्वान् था। वह स्पिनोज़ा की योग्यता और व्यवहार के लिए बड़ी प्रशंसा करता था। इससे उसकी ख्याति .खूब फैली, परन्तु उसमे रत्ती भर भी अभिमान नहीं बढ़ा। युवावस्था होते हुए भी, उसने मनुष्यों की मित्रता और प्रशंसा को तुच्छ समझने की अकालपक्क दूरदृष्टि दिखलाई।

मनुष्य-जाति की की हुई अधिकांश बुराई का कारण स्पिनोज़ा उनकी अपूर्ण बुद्धि को समझता था। इस डर से कि कहीं उससे कोई भूल न हो जाय, वह नगर को छोड़कर एक गाँव मे चला गया। उसने समझ लिया था कि वहाँ अधिक एकान्त मिलेगा। परन्तु, उसके अन्तर्धान हो जाने के वाद, जो सच्चे पण्डित उसे ढूँढ रहे थे वे फिर उसके पास जाकर उसे तङ्ग करने लगे। स्पिनोजा शुद्धमति मनुष्यों के सच्चे प्रेम के प्रति सर्वथा उदासीन नहीं था। इसलिए उसने गाँव को छोड़कर किसी नगर में रहना स्वीकार कर लिया जिससे वहाँ उन्हे उससे मिलने मे कम कठिनाई हो। वह हेग नगर में जाकर रहने लगा और अपने जीवन के अन्त तक वहीं रहा।

आरम्भ में स्पिनोजा के पास थोड़े ही मित्र आते थे। परन्तु जिस स्थान पर वह रहता था वहाँ उन यात्रियों की कभी कमी न रहती थी जो दर्शनीय वस्तुओं की खोज मे रहते है। उनमें से अधिक समझदार अपनी यात्रा को तब तक व्यर्थ समझते थे जब तक वे उससे न मिल लें। इसके अतिरिक्त यह देखकर

कि वह स्वयं भी अपनी ख्याति के समान ही महान् है, कोई भी विद्वान ऐसा न होगा जो अपनी शङ्काओं का समाधान कराने के लिए उससे पत्र-व्यवहार न करता हो। इस बात का प्रमाण यह है कि उसकी मृत्यु के बाद जो पुस्तक छपी थी उसमे ये चिट्ठियाँ बहुत बड़ी संख्या में छपी हैं। उसे बहुसंख्यक लोगों से मिलना पड़ता था; योरप के सभी भागों के विद्वानों की चिट्ठियों का उत्तर देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त उसने वे अद्भुत पुस्तकें लिखीं जो आज हमारे आनन्द का कारण बन रही हैं। ये सारे काम भी इस प्रतिभाशाली मनुष्य को काम में लगाये रखने के लिए पर्याप्त न थे। प्रति दिन वह कुछ घण्टे दूरदर्शक और सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रों के लिए लेन्ज़ तैयार करने में लगाता था। इस काम मे उसने ख़ासी उन्नति की थी। यदि मृत्यु उसके जीवन-तन्तु को काट न देती तो यह कहने में हमे तनिक भी सङ्कोच नहीं कि वह दृग्विद्या के गम्भीरतम रहस्यों का उद्घाटन कर जाता।

स्पिनोज़ा इतना प्रचण्ड सत्यान्वेषी था कि यद्यपि उसका स्वास्थ्य अच्छा न था और उसे विश्राम की बहुत आवश्यकता थी, तो भी वह इतना थोड़ा विश्राम लेता था कि एक समय तो वह पूरे तीन मास तक अपने कमरे से बाहर नहीं निकला। उसका सत्यानुराग इतना अधिक था कि अपने काम में बाधा पड़ने के डर से उसने हीडलबर्ग मे प्रोफेसर बनने से इनकार कर दिया था।

स्पिनोज़ा के पूर्व बाइबिल एक अगम्य धर्ममन्दिर था। जो लोग उसके सम्बन्ध में बात करते थे वे सब अन्धों के सदृश थे। उसी ने अपनी "ब्रह्मविद्या और राजनीति" नामक पुस्तक मे एक पण्डित की प्रामाणिकता के साथ कुछ कहा। यह निश्चित है कि उसके पूर्व किसी भी मनुष्य को इब्रानियों की प्राचीन विद्या का ऐसा पूर्ण ज्ञान नहीं था।

निन्दा द्वारा लगाये हुए घाव से बढ़कर यद्यपि कोई भी दूसरा घाव भयानक या दुस्सह नहीं, तो भी किसी ने स्पिनोजा को उन लोगों के विरुद्ध, जो उस पर आक्रमण करते थे, रोप प्रकट करते नहीं सुना। अनेक लोगों ने उसकी उपर्युक्त पुस्तक पर कठोर एवं कटु तिरस्कारों से उसे बदनाम करने का यत्न किया, परन्तु उन्हीं के शस्त्र उनके विरुद्ध काम में लाने के बजाय स्पिनोज़ा ने केवल इतना किया कि निन्दकों ने उसके जिन वाक्यों के अशुद्ध अर्थ निकाले थे उनको उसने साफ कर दिया, ताकि उनका विद्वेष निष्कपट साधु पुरुषों को गड़बड़ मे न डाल सके। यदि उस पुस्तक से भारी अभिद्रोह उत्पन्न हुआ, तो कहना पड़ता है कि यही पहली मर्तबा नहीं थी जब महापुरुषों के विचारों के अशुद्ध अर्थ किये गये हों। जितनी बड़ी कीर्ति होगी उतने ही अधिक उसमे भय होंगे।

स्पिनोज़ा धन-सम्पत्ति की बहुत कम परवा करता था। एम० डी० विट्ट नाम का एक सज्जन उसके लिए दो सौ फ़ाङ्क वार्षिक की पेंशन छोड़ गया। उसके मरने पर जब स्पिनोज़ा ने

उसकी लिखित वसीयत उसके उत्तराधिकारियों को दिखाई और उन्होंने पेंशन देना जारी रखने मे कुछ कठिनाई बताई तो उसने वसीयत का काग़ज़ ऐसी बेपरवाही से उनको लौटा दिया मानो उसके पास कोई और सम्पत्ति हो। उसका यह त्याग देखकर वे उस पर पुनः विचार करने लगे और उन्होंने उसे सहर्ष पेंशन देते रहना स्वीकार कर लिया। इस पेंशन के सिवा उसकी और कोई आय न थी, क्योंकि उत्तराधिकार में पिता से उसे सिवा व्यापार-सम्बन्धी झगड़ों के और कुछ न मिला था। ये झगड़े उन यहूदियों के साथ थे जिनसे उसका पिता व्यवहार किया करता था। इन लोगों ने जब देखा कि स्पिनोज़ा की इच्छा उनके असाधु व्यापारों को ठीक करने की नहीं तो उन्होंने उसको ऐसी गड़बड़ में डाल दिया जिससे उसने अनिश्चित प्रत्याशाओं के कारण अपने मन की शान्ति का बलिदान करने की अपेक्षा सब कुछ उनके हाथ में छोड़ देना ही अच्छा समझा।

स्पिनोज़ा ऐसे कामों से बहुत बचता था जिनके कारण लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो या जिनसे लोग उसकी प्रशंसा करें। यहाँ तक कि अपनी मरणासन्न दशा मे उसने शर्त लगा दी कि मेरी "नीतिशास्त्र" (एथिक्स) नामक पुस्तक पर मेरा नाम न छापा जाय। वह कहता था कि इस प्रकार का दम्भ एक दार्शनिक के योग्य नहीं। फिर भी उसकी कीर्ति संसार मे इतनी फैल गई थी कि उच्च कोटि के लोगों मे सर्वत्र उसकी चर्चा होती थी।

स्पिनोज़ा मे एक और भी सद्गुण था जो दूसरे दार्शनिकों मे बहुत कम पाया जाता है। वह देखने मे बड़ा साफ-सुथरा था। वह तब तक घर से बाहर नहीं निकलता था जब तक ऐसे कपड़े न पहन ले जिनके कारण एक भद्र मनुष्य एक विद्यार्थी से अलग पहचाना जाता है।

स्पिनोज़ा कहा करता था कि अस्वच्छ और असावधान रूप हमे बुद्धिमान् नहीं बनाता; इसके विपरीत, एक बनावटी असावधानता सच्ची बुद्धिमत्ता से रहित नीच भाव का लक्षण है। इस नीच भाव मे ज्ञान केवल अशुद्धता और भ्रष्टता ही उत्पन्न कर सकता है।

सारे जीवन-काल में स्पिनोज़ा का स्वास्थ्य कभी बहुत अच्छा नहीं रहा, इसलिए उसने अपने बचपन से ही कष्ट सहन करना सीखा था। धैर्यपूर्वक पीड़ा को सहन करने मे शायद ही कभी कोई उसके बराबर हुआ हो। वह अपने भीतर ही सान्त्वना ढूँढता था। एकमात्र पीड़ा, जिससे उसे दुःख होता था, दूसरों का दुःख था।

स्पिनोजा का मत था कि "विवेक को यदि मनुष्य कार्य मे परिणत न कर सके अथवा उन दशाओं में जहाँ पसन्द पूछी गई हो इसका उपयोग करने की उसे मनाही की गई हो, तो विवेक व्यर्थ है। मनुष्य के दो सबसे बड़े और सबसे सामान्य दोष आलस्य और धृष्टता है। कुछ लोग तो पूर्ण अज्ञान में आलस्य से लेटे रहने मे ही सन्तुष्ट हैं। वे पशुओं से भी नीचे हैं।

इसके विपरीत दूसरे अपने को अत्याचारी बना लेते हैं। वे सरल लोगों के मन पर शासन करते हैं। वे शाश्वत सच्चाइयों के बजाय उन्हें झूठी भावनाओं के जगत् में ले जाते हैं। ये झूठी भावनाएँ उन असङ्गत विश्वासों का उद्गम हैं जिन्होंने मनुष्य-समाज को मूढ बना दिया है, जिन्होंने उनको आपस में अलग अलग कर दिया है, जो प्रकृति के चरम सङ्कल्प के नितान्त विरुद्ध है; क्योंकि प्रकृति तो इनको, एक माता की सन्तान के सदृश, एक दूसरे के आत्मीय बनाना चाहती है। इसलिए केवल वे ही सत्य को जान सकते हैं जो अपने यौवन की शिक्षाओं को उतार कर फेंक सकते हैं। फलतः यह आवश्यक है कि हम स्वभाव के संस्कारों को दबाने और मानवों के मन में भरे हुए झूठ विचारों को नष्ट करने के लिए अतीव असाधारण प्रयत्न करें। इसके बाद ही हम बातों का निर्णय करने मे समर्थ होंगे।" उसकी राय में, इस रसातल में गिरने से बचना उतना ही बड़ा चमत्कार है जितना अस्तव्यस्तता को ठीक करना।

इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि स्पिनोज़ा अपने सारे जीवन-काल में अन्धविश्वास के विरुद्ध युद्ध करता रहा। उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अतिरिक्त, बचपन में पिता से मिली हुई शिक्षा ने भी उसे इस ओर लगाया। उस भले मनुष्य ने अपने पुत्र को अन्धविश्वास और सच्ची धार्मिकता में भेद करना सिखाया था। स्पिनोज़ा मुश्किल से दस वर्ष का

था कि एक दिन उसके पिता ने उसकी परीक्षा लेने की ठानी। अम्सटर्डम मे एक बुढ़िया से उसको कुछ रुपये लेना था। उसने स्पिनोज़ा को उससे रुपया लेने भेजा। जब वह बुढ़िया के घर पर पहुँचा तो वह बाइबिल पढ़ रही थी। उसने इशारे से स्पिनोजा को कहा कि तनिक ठहर जाओ, मैं पाठ समाप्त कर लूँ। जब वह पूजा-पाठ कर चुकी तो लड़के ने कहा कि मैं आपसे रुपया लेने आया हूँ। तब उस अच्छी बुढ़िया ने रुपये गिने और उनकी ओर सङ्केत करते हुए लड़के से कहा— "तुम्हारे बाप के जितने रुपये मुझे देने हैं वे यह पड़े हैं। परमात्मा करे कि तुम भी बड़े होकर अपने पिता के समान ही ईमानदार निकलो। उसने मूसा के धर्म पर चलना कभी नहीं छोड़ा। जितना तुम उसके चरण-चिह्नों पर चलोगे, उतना ही परमात्मा तुम्हे सुखी रक्खेगे।" इतना कहने के पश्चात् बुढ़िया उसके थैले मे रुपये डालने लगी। परन्तु लड़के ने उसमे उस सच्चे दम्भ और झूठी धार्मिकता के सुनिश्चित लक्षण देखे जिससे उसके पिता ने उसे सावधान किया था। इसलिए उसने रुपयों को गिनने का हठ किया, यद्यपि बुढ़िया उसे इससे रोकने के लिए बहुतेरा टाल-मटोल करती रही। उसने देखा कि बुढ़िया ने उनमे से दो रुपये चालाकी से खिसकाकर मेज़ की दराज़ मे छिपा दिये हैं। इससे उसका सन्देह सत्य प्रमाणित हुआ। इस बात में अपनी सफलता पर उसे बड़ा अभिमान हुआ और उसके पिता ने भी उसकी भूरि भूरि प्रशसा की। अब वह

बुढिया जैसे व्यक्तियों का अध्ययन पहले से भी अधिक सावधानी के साथ करने लगा। वह उनकी ऐसी हँसी उड़ाता कि जो भी सुनता आश्चर्य करने लगता।

स्पिनोज़ा जो कुछ करता उसमे साधुता उसका लक्ष्य रहता था। परन्तु साधुता को वह, प्राचीनों के सदृश, कोई भयानक प्राणी नहीं समझता था, क्योंकि वह निष्पाप आनन्द का विरोधी न था। सचमुच, मानसिक आनन्द ही उसका प्रमुख कार्य था। शारीरिक आनन्द से वह बहुत थोड़ा सम्बन्ध रखता था।

सब से बड़ी बात यह है कि यहूदियों जैसे दुनियादार और अन्धविश्वासी लोगों मे जन्म लेकर भी स्पिनोज़ा मे कटुता छू न गई थी, और उसने अपनी बुद्धि को उन झूठी कल्पनाओं से मुक्त कर लिया था जो उन लोगों में से अनेकों में पाई जाती हैं। ईश्वर के सम्बन्ध मे भी उसके विचार वैसे न थे जैसे अज्ञानी जनता के थे।

स्पिनोज़ा कहा करता था कि हमें जितना अधिक ईश्वर का ज्ञान रहता है उतना ही अधिक हम अपने मनोविकारों को अपने वशीभूत कर सकते हैं; ईश्वर को जानने से हमे पूर्ण मानसिक शान्ति मिलती है, सच्चा ईश्वर-प्रेम प्राप्त होता है जो मुक्ति का दाता है, और मुक्ति परमानन्द तथा स्वाधीनता है।

स्पिनोज़ा की बात-चीत का ढङ्ग इतना मनोहर और उसकी उपमाएँ इतनी उपयुक्त होती थीं कि प्रत्येक व्यक्ति, अज्ञानतः,

उसके सदृश सोचने लगता था। दूसरे को प्रभावित करने के लिए उसे नम्रतापूर्वक या सुन्दरतापूर्वक बोलने की भी आवश्यकता न होती थी। वह अपने विचार इतने स्पष्ट रूप से प्रकट करता था और उसका भाषण इतना विवेकपूर्ण होता था कि श्रोताओं मे से एक भी तो ऐसा न रहता था जिसे उसकी वात का विश्वास न हो जाय।

यद्यपि हमारा दार्शनिक उन कठोर मनुष्यों मे से न था जो विवाह को मानसिक विकास में बाधक समझते हैं, तो भी वह आजीवन अविवाहित ही रहा। इसका कारण या तो यह था कि वह पत्नी के बुरे मिज़ाज से डरता था, या उसे दर्शन-शास्त्र पर इतना अधिक प्रेम था कि उसमें दूसरे किसी प्रेम के लिए स्थान ही न रह गया था।

स्पिनोज़ा का जन्म सन् १६३२ मे और मरण २२ फरवरी सन् १६७७ को हुआ। वह इस संसार मे केवल पैतालीस ही वर्ष रहा। यद्यपि वह दीर्घजीवी नहीं हुआ, तो भी उसके विपय मे कहा जा सकता है कि वह प्रगाढ़ रूप से जीता रहा; क्योंकि उसने वे सब लाभ प्राप्त कर लिये थे जिनका चरित्रशुद्धि के साथ सम्बन्ध है। गम्भीर ज्ञान के कारण महान् प्रसिद्धि प्राप्त करने के अनन्तर उसके लिए कोई वात शेप न रह गई थी। हम उसे सुखी और सौभाग्यशाली समझ सकते हैं, क्योंकि उसकी मृत्यु उस समय हुई जब उसका निर्मल प्रताप-सूर्य मध्य आकाश में चमक रहा था, और जब उसके परलोकगमन से संसार के

ज्ञानी उतने ही उपयोगी प्रकाश से वञ्चित हो गये जितना सूर्य का प्रकाश है। उसने जनता को वे साधन प्रदान किये जिनसे वह दम्भ और सच्ची ईश्वर-भक्ति मे भेद तथा अन्धविश्वास का मूलोच्छेद कर सकती थी।

न्यूटन

सर आईज़िक न्यूटन

सन् १६४२ से १७२६ तक

[लुई फिग्यीर (Louis Figuier सन् १८१६ से सन् १८६४ तक) के फ्रासीसी लेख के आधार पर]

न्यूटन अठारहवीं शताब्दी की सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक प्रतिभा माना जाता है। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् वाल्टेअर ने इस महान् वैज्ञानिक की महिमा इन शब्दों में वर्णन की है—"हे सर्वोपरि भगवान् के रहस्यों को जाननेवाले, हे उसके नेत्रों से चमकनेवाले शाश्वत पदार्थो! तुम अपने पङ्खों से उस सिंहासन की रक्षा करते हो जिस पर तुम्हारे बीच तुम्हारा प्रभु बैठता है। सच कहना, क्या तुम महान् न्यूटन से डाह नहीं करते?"

ऐसे महापुरुष के मुख से ऐसी प्रशसा अवश्य ही न्यूटन की अमरता का प्रमाण-पत्र है। न्यूटन का जन्म इँगलेड से २५ दिसम्बर सन् १६४२ को हुआ था। वह स्वाभाविक समय से कुछ पहले ही माता के गर्भ से पैदा हो गया था। इससे उसका शरीर दुर्बल था; परन्तु फिर भी वह चौरासी वर्ष तक जीता रहा।

आरम्भ मे न्यूटन मे ऐसे कोई लक्षण नहीं देख पड़े जिनसे वह अच्छा विद्यार्थी कहला सकता। वह आप ही कहता है कि

मैं अध्यापक की बात पर बहुत कम ध्यान देता था और अपनी कक्षा मे बहुत ही साधारण विद्यार्थी था। परन्तु उसकी महत्त्वाकांक्षा को जाग्रत् करने और जिस बात की उसमें कमी थी उसे—बढ़ जाने की लालसा को—उत्तेजित करने के लिए एक दिन एक शुभ घटना हुई। इससे न्यूटन तुरन्त ही विद्यार्थियों की प्रथम पंक्ति में आ गया। उसके एक साथी ने, जो उससे कुछ बड़ा था, उसके पेट मे ज़ोर से मुक्का मारा। न्यूटन ने उस ढ़ङ्गई से बदला लेने के लिए पढ़ाई में उसको पछाडने का निश्चय किया। तब उसी समय से उसने मन लगाकर परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। इससे जल्दी ही वह प्रतिष्ठित विद्यार्थी हो गया। पेट मे लगा हुआ वह मुक्का निष्फल न गया।

न्यूटन को शीघ्र ही यन्त्रविद्या में दिलचस्पी हो गई। इसलिए वह उन कामों मे बहुत कम भाग लेता था जिनमे उसकी आयु के लड़के सामान्यतः लिया करते हैं। एक दिन उसने एक पतङ्ग के साथ लालटैन बाँधकर रात को आकाश में उड़ाया ताकि लोग समझें कि एक नया धूमकेतु प्रकट हुआ है। वह अज्ञानी ग्रामीण लोगों को हक्का-बक्का करके बहुत प्रसन्न होता था।

न्यूटन ऐसी ही बातों मे लगा हुआ था कि उसकी आयु पन्द्रह वर्ष की हो गई। उसकी माता को अब उसे स्कूल से उठा लेना पडा। उसका दूसरा पति मर गया था और उस पति से उसे एक पुत्र था। उसकी आय इतनी न थी कि वह आईज़िक की शिक्षा का व्यय दे सकती। वह उसे साथ

लेकर अपने पहले पति के गाँव मे चली आई और उत्तराधिकार मे मिली हुई अपनी छोटी सी सम्पत्ति का प्रवन्ध उसने न्यूटन को सौंपा। परन्तु न्यूटन का मन इसमे विलकुल न लगता था। वह छोटे छोटे यान्त्रिक उपाय वनाकर मन वहलाया करता था। इसी वचपन मे उसने एक सूर्य-घड़ी वनाई थी। अन्त को लोगों के कहने-सुनने से न्यूटन की माता ने उसे अवाध रूप से विज्ञान का अध्ययन करने की अनुमति दे दी। यह इस प्रकार हुआ,—

एक दिन आईज़िक के एक चाचा ने देखा कि वह, हाथ मे पुस्तक लिये, पूर्णतः ध्यान-मग्न है। उसे कुतूहल हुआ कि वह क्या चीज़ है जिसने लड़के के मन को इतना मग्न कर रक्खा है। उसने लड़के से पुस्तक ली, तो देखा कि वह गणित के एक प्रश्न का समाधान सोच रहा है। एक सोलह वर्ष के वालक को ऐसे गम्भीर विषय पर विचार-मग्न देख उसे वड़ा आश्चर्य हुआ। उसने न्यूटन की माँ से कह-सुनकर लड़के के काम का विरोध वन्द करवा दिया।

अब न्यूटन को फिर स्कूल भेज दिया गया। वहाँ वह अठारह वर्ष की आयु तक रहा। इसके वाद वह जून १६६१ मे ट्रिनिटी कालेज, केम्ब्रिज, मे भरती हो गया। केम्ब्रिज की ओर से वह पार्लियामेंट का मेम्बर चुना गया। इसके थोड़े ही दिन वाद उसकी माता का देहान्त हो गया और स्वयं उसका स्वास्थ्य भी विगड़ने लगा। क्षुधा का अभाव और अनिद्रा के दौरे इस

बात को स्पष्ट करते हैं कि उसकी दशा भयावह थी। इन्हीं दिनों एक ऐसी दुर्घटना हो गई जिसने उसके स्वास्थ्य को भारी धक्का पहुँचाया।

एक दिन सायङ्काल को, गिरजा जाते समय, भूल से वह डेस्क पर बत्ती जलती छोड़ गया। उसका डायमण्ड नाम का एक प्यारा कुत्ता था। न्यूटन की अनुपस्थिति में डायमण्ड ने बत्ती को उलट दिया। इससे डेस्क पर रक्खे हुए सभी काग़ज जलकर राख हो गये। इन्हीं काग़ज़ों पर न्यूटन ने अपने गत कई वर्ष के रासायनिक प्रयोगों के परिणाम लिख रक्खे थे। इन काग़ज़ों के जल जाने से उसे कितना विषाद हुआ होगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। एक चरित-लेखक का विश्वास है कि इस आघात का उसकी बुद्धि पर बड़ा बुरा असर पडा। वह लिखता है कि पैंतालीस वर्ष की आयु के पश्चात् न्यूटन ने किसी भी विज्ञान मे कोई नवीन आविष्कार नहीं किया। यह बात किसी भी प्रतिभाशाली मनुष्य की दशा मे अनोखी जान् पडती है, क्योंकि यही वह आयु है जब कि साधारणतया बुद्धि परिपक्वता के उच्चतम शिखर पर होती है।

न्यूटन के क्रमिक आविष्कारों पर जो आपत्तियाँ की गई थी उन सब के उत्तर उसने सफलतापूर्वक दिये; उसकी कीर्त्ति इँगलेंड और समूचे योरप मे फैल गई; फिर भी पचास वर्ष की आयु में वह निर्धनता का जीवन व्यतीत करता था। जीते रहने और अपने वैज्ञानिक कार्य के लिए आवश्यक सामग्री ख़रीदने के लिए,

उसकी सारी आय अपर्याप्त थी। चार्ल्स मोंटेगू, जो पीछे से काउंट ऑव हेलीफेक्स हुआ, यद्यपि न्यूटन से कुछ वर्ष छोटा था, परन्तु दोनों एक ही काल में केम्ब्रिज में पढ़ा करते थे। जब सन् १६९४ में मोंटेगू चेंसलर ऑव दि एक्सचेकर बना तो उसने अपने मित्र को ६०० पौंड वेतन देकर वार्डन ऑव मिंट अर्थात् टकसाल का दारोग़ा नियुक्त कर दिया। कुछ वर्ष बाद, सन् १६६९ में, न्यूटन १५०० पौंड वेतन पर डायरेक्टर-इन-चीफ बना दिया गया।

वाल्टेअर इस विषय पर टिप्पणी करता हुआ अपने दार्शनिक अभिधान मे यों लिखता है :—"जब मैं छोटा था तो समझता था कि न्यूटन ने अपने गुणों के प्रताप से धन पैदा किया था। मै समझता था कि राजसभा और लंडन नगर ने उच्च स्वर से प्रशंसा करते हुए उसे राष्ट्रीय टकसाल का अधिष्ठाता नियुक्त किया होगा। परन्तु यह मेरी भूल थी। न्यूटन के मिस कण्ड्यूइट नाम की एक बहुत सुन्दरी भाञ्जी थी। चेंसलर हेलीफेक्स उस पर बहुत रीझ रहा था। यदि यह रूप-लावण्यमयी भान्जी न होती, तो केलकूलस (गणना-प्रणाली) और गुरुत्वाकर्षण उसे कुछ भी लाभ न पहुँचा सकते।" परन्तु सम्भवतः वाल्टेअर अत्युक्ति कर रहा है।

खेद का विषय है कि न्यूटन ने सरकारी नौकर हो जाने के बाद विज्ञान का अध्ययन छोड़ दिया। वह कहा करता था कि राजा का कार्य मेरे अपने कार्य से पहले होना चाहिए।

उसके मन की शान्ति के लिए यह कहीं अच्छा था कि वह अपनी पहले की स्वतन्त्रता बनाये रखता, क्योंकि अब उस पर चारों ओर से हज़ारों छोटी-छोटी उत्तेजनाओं, आरोपों एवं अभियोगों की बौछार होने लगी। पार्लियामेंट की आज्ञा से चलोनर नाम के एक व्यक्ति ने तहकीकात की तो बहुत से नकली रुपये पकड़े गये। दोषियों मे न्यूटन का नाम भी लिया गया। परन्तु यह बात झूठ मालूम होती है। न्यूटन को एक व्यक्ति ६००० पौंड घूस देना चाहता था; परन्तु उसने लेने से इनकार कर दिया।

सन् १७०५ में महारानी एन ने न्यूटन को बैरन की उपाधि से विभूषित किया। अन्ततः न्यूटन को वह सब सम्मान एवं यश प्राप्त हो गया जिसकी वह युक्तियुक्त रूप से आकांक्षा कर सकता था। प्रत्येक व्यक्ति उसकी प्रतिभा का सिक्का मानता था और उसकी कीर्ति समूचे योरप मे फैल रही थी। फ़ोण्टनल कहता है कि "उसके प्रति लोगों की इतनी अधिक पूज्य-बुद्धि थी कि स्वयं मृत्यु भी उससे अधिक उसका यश न बढ़ा सकती थी।"

न्यूटन आजीवन अविवाहित रहा। शायद इसका कारण यह था कि उसके पास विवाह के विषय में विचार करने के लिए समय ही न था। अस्सी वर्ष की आयु तक उसका स्वास्थ्य ख़ासा अच्छा रहा। उसे कभी चशमा लगाने की आवश्यकता नहीं हुई, और जब तक वह जीवित रहा, उसका एक भी दाँत नहीं टूटा।

न्यूटन बड़ा धार्मिक था। वह अपने सामने किसी को धर्म की हँसी नहीं उड़ाने देता था। एक समय उसके एक मित्र ने, जिसे इस प्रकार का कोई सङ्कोच न था, धर्म की दिल्लगी की। इस पर न्यूटन ने उसे मना करते हुए कहा कि मैंने इस विषय का अध्ययन किया है, आपने नहीं।

फोण्टनल अपनी पुस्तक न्यूटन-स्तोत्र (Eloge de Newton) में इस महान् वैज्ञानिक की अन्तिम व्याधि और मृत्यु का वर्णन इस प्रकार करता है:—

"समझा जाता था कि न्यूटन को पथरी ज़रूर थी। वह दूर न हो सकी। जब पीडा इतनी प्रचण्ड हो जाती थी कि उसके मुखमण्डल से स्वेद-बिन्दु टपकने लगते, तब भी कभी वह आर्त्तनाद करता नहीं सुनाई दिया, न कभी अधीरता के लक्षण ही उसने प्रकट किये। जब कभी यह असह्य पीड़ा क्षण भर के लिए शान्त हो जाती थी तो वह मुस्किराने और अपने सामान्य उल्लास के साथ बातें करने लगता था। इस समय तक वह रोज़ कई घण्टे निरन्तर पढ़ता-लिखता था। उस दिन सायङ्काल तक वह पूर्ण रूप से अपने होश-हवास मे था। अब वह सर्वथा अचेत हो गया। इसके बाद फिर उसे चेतना नहीं हुई, मानो उसकी आत्मा की शक्तियाँ पूर्ण विनाश के ही अधीन थीं और ह्रास का अनुभव नहीं कर सकती थीं। उसकी मृत्यु सोमवार २० मार्च को पचासीवें वर्ष मे हो गई।"

न्यूटन संसार का एक महान् व्यक्ति था। यह ठीक है कि उसमें भी त्रुटियाँ थीं। उनको हमने यहाँ छिपाने का यत्न नहीं किया। परन्तु कौन मनुष्य त्रुटियों से रहित है? जिस प्रतिभाशाली व्यक्ति ने मानवी बुद्धि की सीमाओं को इतना विस्तृत किया उसे बहुत कुछ क्षमा ही कर देना चाहिए।

कान्त

इमेनुएल काँट

सन् १७२४ से १८०४ तक

[ई० ए० क्रु० वेसियन्स्की और टामस डी क्विन्से (सन् १७८५ से १८५६ तक) के जर्मन प्रबन्ध का साराश]

मैं मान लेता हूँ कि सभी शिक्षित मनुष्य इमेनुएल काँट के व्यक्तिगत इतिहास में दिलचस्पी रखते हैं, चाहे काँट के दार्शनिक मतों के इतिहास के संसर्ग मे आने का उनको कभी अवसर न भी मिला हो या उसमे उनको कोई रुचि न रही हो। महा-पुरुष, चाहे वह किसी लोकप्रिय मार्ग पर न भी चल रहा हो, सदा सब लोगों के कौतुक का विषय होना चाहिए। किसी पाठक को काँट के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन मान लेना, दूसरे शब्दों मे उसे पूर्ण रूप से अशिक्षित मान लेना है। अतएव यद्यपि वास्तव में संयोग से वह काँट में कोई रुचि न भी रखता हो, तो भी यह मान लेना कि वह उसमें रुचि रखता है शिष्टाचार की बात है। इसलिए पाठकों से काँट की जीवनी एवं उसके घरेलू स्वभावों का अध्ययन करने के लिए अनुरोध करना अनु-चित न होगा।

इमेनुएल काँट का जन्म प्रशिया के अन्तर्गत कोनिग्सवर्ग नगर में २२ एप्रिल सन् १७२४ ईसवी को हुआ था। उसके

माता-पिता निर्धन परन्तु धर्म-परायण थे। उन्होंने अपने मित्रों की सहायता से इमेनुएल काँट को शिक्षा दिलाई। वह एक खैराती विद्यालय में भेजा गया। वहाँ से सन् १७३२ मे वह राजकीय विद्यालय मे चला गया। वहाँ उसने लैटिन और ग्रीक भाषाएँ सीखीं। सन् १७३७ मे कॉट की माता का देहान्त हो गया। वह बड़े उच्च चरित्र की स्त्री थी। वह अपनी स्थिति से बढ़कर सुशिक्षिता और बुद्धिमती थी। बाल्यकाल मे अपने विश्रुत पुत्र के विचारों को सन्मार्ग दिखाकर और उच्च सदाचार सिखाकर उसके भावी उत्कर्ष मे उसने भारी सहायता दी। काँट ने माता के इस उपकार को जन्म भर नहीं भुलाया। वह सदा बड़ी श्रद्धा और भक्ति से माता की चर्चा किया करता था।

सन् १७४० मे वह कोनिग्सबर्ग के विश्वविद्यालय मे भरती हुआ। सन् १७४६ में, जब उसकी आयु कोई बाईस वर्ष की थी, उसने एक पुस्तक लिखी। इसका विषय कुछ तो गणित शास्त्र से और कुछ दर्शन शास्त्र से सम्बन्ध रखता था—अर्थात् सजीव शक्तियों का मूल्य-निर्धारण। इस समय से लेकर सन् १७७० तक, कॉट विभिन्न परिवारों मे निजी शिक्षक का काम करके, या कोनिग्सबर्ग मे विशेषतः क़िलाबन्दी की कला पर सैनिक लोगों को निजी व्याख्यान देकर अपना निर्वाह करता रहा। सन् १७७० मे वह गणित का उपाध्याय नियुक्त हुआ। परन्तु उसने शीघ्र ही गणित छोड़कर तर्क और अध्यात्म विद्या पढ़ाना आरम्भ कर दिया। इस अवसर पर उसने प्रारम्भिक

विवाद (De Mundi Sensibilis atque Intelligibilis Formâ et Principus) "संसार की उत्पत्ति और आकार के विषय में उपयुक्त और प्रांजल" लिखा। यह असाधारण पुस्तक है, क्योंकि इसमे अलौकिक तत्त्वज्ञान के प्रथम बीज पाये जाते हैं। सन् १७८१ में उसने "शुद्ध बुद्धि का विवेचनात्मक निरूपण" नामक बृहद् ग्रन्थ लिखा। १२ फरवरी सन् १८०४ को उसकी मृत्यु हो गई।

काँट के जीवन के कई महान् युग हैं। परन्तु उसका जीवन उतना घटनाओं के कारण असाधारण नहीं, जितना उसके दैनन्दिन भाव की पवित्रता और दार्शनिक महत्ता के कारण। हम उसे नष्ट होती हुई शक्तियों के कष्ट के साथ, और दो विभिन्न व्याधियों के संक्षोभ, उद्वेग और व्यथा के साथ युद्ध करते पाते है। इन दो व्याधियों मे से एक तो उसके पेट को और दूसरी उसके सिर को पीड़ित करती थी। इन सबके ऊपर उसकी प्रकृति की कुलीनता एवं सहृदयता अन्त तक विजयपूर्वक ऊपर चढ़ती है, मानो उसे पङ्ख लगे हों।

पहले काँट होटल मे खाया करता था, परन्तु बाद को वह घर पर भोजन बनवाने लगा। वह प्रति दिन कुछ मित्रों को भोजन के लिए निमन्त्रित किया करता था। उनकी संख्या कम से कम तीन और अधिक से अधिक नौ होती थी। छोटे पर्व के दिन यह संख्या पाँच से आठ तक हो जाती थी। उसके घरेलू प्रबन्ध की, विशेषतः उसकी भोजन-मण्डलियों की, सारी व्यवस्था

में एक विशेष बात रहती थी; परन्तु यह नहीं कि शिष्टाचार में किसी प्रकार की कमी रहती हो, जैसा कि उन घरों मे देखा जाता है जहाँ स्त्रियाँ नहीं होतीं। अपने जीवन के उत्तरार्ध में, उतना वास्तविक भूख के कारण नहीं जितना स्वभाव के व्याकुल अनुभव अथवा पेट के नियतकालिक दाह के कारण, वह निमन्त्रित लोगों में से अन्तिम के आने की प्रतीक्षा धैर्य के साथ बड़ी मुश्किल से कर सकता था।

काँट का एक भी ऐसा मित्र न था जो उसके साथ भोजन करने के दिन को एक उत्सव का दिन न समझता हो। अपने को उपदेष्टा का रूप दिये बिना ही, काँट एक उच्च कोटि का उपदेष्टा था। सारा सहभोज उसके प्रबुद्ध मानस से, प्रत्येक विषय पर, अवसर के अनुसार स्वभावतः और अकृत्रिम रूप से निकले हुए उद्गारों से चरपरा बन जाता था; और समय एक बजे से चार-पाँच बजे अथवा इससे भी देर तक लाभ और प्रसन्नता के साथ बीत जाता था। काँट को वार्तालाप का एक क्षण के लिए भी ठण्डा पड़ना सह्य न था। उसकी मनोरञ्जकता को दुबारा तेज़ करने के लिए वह कोई न कोई उपाय निकाल लेता था। इस कार्य मे उसे उस कौशल से बड़ी सहायता मिलती थी जिसके द्वारा वह प्रत्येक अतिथि से उसकी विशेष रुचि, या उसके कार्यों की दिशा मालूम कर लेता था। और इन विषयों पर, चाहे वे कुछ भी क्यों न हों, वह ज्ञानपूर्वक और एक मौलिक आलोचक की दिलचस्पी के साथ बात करने के लिए सदा तैयार

रहता था। एक विचित्र बात यह थी कि वह अपने तत्त्वज्ञान या कोनिग्सबर्ग की स्थानीय घटनाओं के विषय मे बहुत ही कम बातचीत करता था। वास्तव में वह उस दोप से पूर्णतः मुक्त था जो अनेक विद्वानों और साहित्यिकों में पाया जाता है, अर्थात् उसमे उन लोगों के प्रति असहिष्णुता का भाव न था जिनके व्यवसायों ने उनको उसके अपने काम के साथ विशेष सहानुभूति रखने के अयोग्य बना दिया था। उसका बातचीत का ढङ्ग परले दर्जे का लोकप्रिय था; उसमें पण्डिताऊपन बिलकुल न होता था। यहाँ तक कि किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने उसके ग्रन्थ तो देखे हों परन्तु जिसका उसके साथ व्यक्तिगत परिचय न हो, यह विश्वास करना कठिन हो जाता था कि इस आनन्ददायक और संलापप्रिय साथी में उसने "अलौकिक तत्त्वज्ञान" (Transcedental Philosophy) के गम्भीर प्रवर्तक को देखा है।

कांट के भोजन में वार्तालाप के विषय मुख्यतः पदार्थ-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, जीव-विद्या, उल्काशास्त्र और सबसे बढ़-कर; राजनीति से लिये जाते थे। संवाद-पत्रों मे छपे समाचारों पर बड़ी सावधानता के साथ वाद-विवाद करके उनकी जाँच की जाती थी। किसी ऐसे वृत्तान्त के सम्बन्ध में जिसके समय की तिथि और स्थान का पता न हो, चाहे वह ऊपर से सत्य ही जान पड़ता हो, वह घोर अविश्वासी था, और उसे दुबारा कहने के योग्य नहीं समझता था। राजनीतिक घटनाओं का और

उनको उत्पन्न करनेवाली गुप्त नीति का उसे इतना अच्छा ज्ञान रहता था कि जब वह इस विषय पर बात करता था तो ऐसा मालूम होता था मानों कोई ऐसा मनुष्य बोल रहा है जिसे मन्त्रिमण्डल की भीतरी बातों का भली भाँति ज्ञान है। उसके राजनीतिक अनुमान प्रायः ठीक ही निकलते थे।

केवल एक साथी के रूप में ही नहीं, वरन् एक उदार और नम्र अतिथि-सेवक के रूप मे भी, काँट की ख्याति थी। उसे अपने अतिथियों को प्रसन्न और प्रमुदित देखने, और उसके अव्यवहार्य भोजों के मिश्रित—मानसिक और उदारतापूर्वक शारीरिक—आनन्दों से उल्लसित भाव के साथ उठने से बढ़कर और किसी बात मे प्रसन्नता न होती थी। मुख्यतः कदाचित् सुखकर प्रमोद को जारी रखने के विचार से, वह अपनी भोज-मण्डलियों की रचना मे अपने को एक चतुर कलाविद् के रूप मे प्रकट किया करता था। वह सदा दो नियमों का पालन करता था। पहला यह कि मण्डली में सब एक ही प्रकार के मनुष्य न हों; यह इसलिए कि वार्तालाप में पर्याप्त विचित्रता रहे। फलतः कोनिग्सबर्ग-जगत् में अधिक से अधिक जितना वैचित्र्य मिल सकता था वह सब उसकी भोज-मण्डलियों मे होता था, सभी प्रकार के लोग—राजपुरुप, उपाध्याय, चिकित्सक, पादरी, और प्रबुद्ध व्यापारी—बुलाये जाते थे। उसका दूसरा नियम यह था कि मण्डली मे युवकों, बहुधा विश्वविद्यालय के छात्रों मे से चुने हुए नवयुवकों का पलड़ा ठीक रक्खा जाता था, ताकि

वार्तालाप पर बालकोचित विनोद और उल्लास की गति की छाप लग जाय। इसका एक और हेतु यह भी जान पड़ता है कि कच्ची उम्र में अपने कुछ प्रिय तरुण मित्रों की अकाल-मृत्यु से उसके मन पर जो कभी-कभी विषाद छा जाता था उससे वह इस रीति से अपने को मुक्त कर लेता था।

मित्रों के रोग में उनके साथ सहानुभूति प्रकट करने की काँट की रीति भी अनोखी थी। जब तक भय आसन्न रहता था, वह अशान्त चिन्ता का प्रमाण देता था, निरन्तर पूछ-ताछ करता था, अधीरता के साथ सङ्कट-समय की प्रतीक्षा में रहता था और कभी-कभी तो मन के संक्षोभ के कारण अपना नित्य का काम भी न कर सकता था। परन्तु रोगी की मृत्यु होते ही उसका मन पुनः स्थिर हो जाता था और दृढ़ शान्ति—प्रायः उदासीनता—का भाव आ जाता था। कारण यह था कि वह जीवन को व्यापक रूप से देखता था। फलतः जीवन के उस विशेष रोग को, जिसे हम अस्वस्थता कहते हैं, वह शाश्वत परिवर्तन और भूलने की अवस्था समझता था। इन दो के बीच और भय तथा आशा की बढ़ने-घटनेवाली सहानुभूतियों के बीच एक स्वाभाविक अनुपात है जो इसे बुद्धि-सङ्गत प्रमाणित करता है। इसके विपरीत मृत्यु एक स्थायी अवस्था है जिसमें न्यूनता अथवा अधिकता की कोई गुञ्जायश नहीं, जो सब चिन्ताओं का अन्त और असमञ्जस के संक्षोभ को सदा के लिए शान्त कर देती है—वह इसे किसी अनुभव की दशा के अनुकूल नहीं, वरन्

स्थायी और अपरिवर्त्तनीय अवस्था समझता था। परन्तु उसका यह सारा दार्शनिक वीरतावाद एक अवसर पर बिलकुल मिट्टी में मिल गया। ईहरनबोथ नाम का एक बड़ा बुद्धिमान् और गुणी युवक था। उस पर कॉट का बड़ा ही प्रेम था। उसकी मृत्यु हो गई, जिससे काँट धाड़ें मार मार कर रोने लगा। यह स्वाभाविक ही था। उसने दूरदर्शिता से एक नियम बना रक्खा था। वह यथासम्भव नवयुवकों को ही अपना सामाजिक साथी बनाता था। फिर भी अपनी लम्बी आयु मे उसे कई साथियों के अनन्त वियोग का दारुण दुःख देखना पड़ा।

अच्छा अब फिर कॉट की दिन-चर्या को लीजिए। मित्र-मण्डली के भोजन कर चुकने के बाद ही कॉट व्यायाम के लिए बाहर घूमने चला जाता था। परन्तु इस समय वह अपने साथ कोई साथी नहीं लेता था। इसका कुछ कारण तो यह था कि इतने उत्सव और बोल-चाल-सम्बन्धी विश्राम के बाद चिन्तन करना वह ठीक समझता था। और कुछ यह भी कारण था कि वह मुँह बन्द करके केवल नाक द्वारा ही साँस लेना चाहता था, परन्तु घूमते समय बातें करने से लगातार मुँह खोलना पड़ता था। नाक से साँस लेना वह इसलिए चाहता था कि इस प्रकार बाहर की वायु बहुत घूम फिरकर फेफडों में पहुँचती है। घूमते घूमते वह कुछ गरम भी हो जाती है जिससे फेफड़ों मे जलन पैदा नहीं होती। इसका देर तक अभ्यास करने के कारण उसे

.ज़ुकाम, खाँसी और गले की जलन बहुत कम होती थी। वह अपने मित्रों को भी इसी प्रकार नाक द्वारा गहरी साँस लेने को कहा करता था।

वायु-सेवन से लौटकर कॉट लिखने-पढ़ने बैठ जाता था और गोधूलि-समय तक बैठा रहता था। यह संदिग्ध प्रकाश विचार के लिए बड़ा अनुकूल होता है। इस समय वह अपने अधीत विषय पर, यदि वह पुस्तक अच्छी हो, शान्तिपूर्वक चिन्तन करता था। यदि ऐसा न हो तो वह अगले दिन के लिए अपने लेक्चर का, या यदि वह उन दिनों कोई पुस्तक लिख रहा हो तो उसके किसी अंश का स्थूल चित्र तैयार करता था। विश्राम की इस दशा मे, सरदी हो चाहे गरमी, वह सदा अँगीठी के निकट बैठकर खिड़की मे से एक पुराने मीनार को देखा करता था। यह नही कहा जा सकता कि उस अवस्था में उसे वह मीनार स्पष्ट दिखाई देता था, परन्तु मीनार उसकी आँख पर वही प्रभाव डालता था जो सुदूर सङ्गीत कान पर डालता है। सन्ध्या-समय और शान्त ध्यान की इन अवस्थाओं में इस पुराने मीनार को देखकर उसे जो परितोष मिलता था उसका वर्णन करना कठिन है। परिणाम से पता लगता है कि उसके सुख के लिए यह कितने महत्त्व की चीज़ हो गई थी; क्योंकि कालान्तर मे एक निकटवर्ती वाटिका मे सफेदे के पेड़ इतने ऊँचे हो गये कि उन्होंने मीनार को दृष्टि से ओझल कर दिया। इससे कॉट बहुत उद्विग्न और व्याकुल हो गया तथा

अन्त को उसने अपने को सायङ्काल का योग-साधन करने में सर्वथा असमर्थ पाया। सौभाग्य से वाटिका का स्वामी विचारशील और उपकारी मनुष्य था। इसके अतिरिक्त उसके मन में काँट के प्रति सम्मान-भाव भी बहुत था। जब उसे सारी स्थिति समझाई गई तो उसने सफेदों को ऊपर से छँटवा दिया। इससे वह पुराना मीनार फिर दीखने लगा। इससे काँट को पुनः चित्त की स्थिरता प्राप्त हुई और एक बार फिर वह शान्ति के साथ सन्ध्या-कालीन ध्यान-चिन्तन करने मे समर्थ हो गया।

शाम को दीपक जलने के बाद काँट कोई दस बजे तक अध्ययन जारी रखता था। रात को सोने के पाव घण्टा पहले वह सब प्रकार के ऐसे विचारों से, जिनसे किसी प्रकार की थकावट हो या जिन पर बलपूर्वक मनोयोग करना पड़े, यथा-सम्भव मन को हटा लेता था। इसमे उसका सिद्धान्त यह था कि मन मे बहुत अधिक उकसाहट और उत्तेजना होने से, ऐसे विचारों के अनिद्रा उत्पन्न करने का भय होता है। जिस समय वह प्रतिदिन सोया करता था, उसमें थोड़ा सा भी हस्तक्षेप उसे बहुत ही अरुचिकर जान पड़ता था। प्रसन्नता की बात यह थी कि ऐसी घटना बहुत कम होती थी। कपड़े उतारते ही वह गद्दे पर लेटकर रजाई ओढ़ लेता था। दीर्घ अभ्यास ने उसे बिछौने के कपड़ों मे छिपकर अपने को लपेट लेने का एक बड़ा ही अच्छा ढङ्ग सिखा दिया था। सबसे पहले वह

खाट के किनारे पर बैठ जाता था। फिर फ़ुरती से हाथों के बल तिरछा उछलकर अपनी माँद में घुस जाता था। इसके बाद वह बिछौने के कपड़ों का एक सिरा खींचकर अपने बायें कन्धे के नीचे ले आता था, और पीठ के नीचे से निकालकर इस प्रकार लपेटता था कि उसके दाये कन्धे के नीचे आ जाता था; फिर वह एक विशेष ढङ्ग से दूसरे सिरे को भी उसी प्रकार करता था; और अन्ततः उसे अपने सारे शरीर के चारों ओर लपेट लेने का प्रबन्ध कर लेता था। इस प्रकार, कोए मे रेशम के कीड़े की तरह लपेटा हुआ, वह निद्रा के आगमन की प्रतीक्षा करने लगता था, जो कि प्रायः तत्काल आ जाती थी। कारण यह कि काँट का स्वास्थ्य उत्कृष्ट था; वह अभावसूचक स्वास्थ्य अथवा पीड़ा या जलन का ही अभाव न था वरन् एक सुनिश्चित सुखकर अनुभूति की दशा थी, सभी प्राणभूत क्रियाओं का सचेतन अधिकार था। तदनुसार, उपर्युक्त रीति से लपेटे जाने पर, उसके मुख से सहसा ये शब्द निकल पड़ते थे—"क्या मुझसे अधिक अच्छे स्वास्थ्यवाले मनुष्य की कल्पना करना सम्भव है?" वास्तव मे उसका जीवन इतना पवित्र था, और उसकी स्थिति की अवस्था इतनी सुखी थी कि उसको उत्तेजित करने के लिए कभी कोई अशान्त मनोविकार, उसे हैरान करने के लिए कभी कोई चिन्ता, या उसे जगाने के लिए कभी कोई पीड़ा नहीं उठती थी। कड़ी से कड़ी सरदी के दिनों मे भी वह कमरे मे आग नहीं जलाता था। न तो उसमें

आमोद-प्रमोद के प्रलोभनों के लिए कोई आसक्ति थी, और न वह सेवा-शुश्रूपा ही कराता था। वास्तव मे, कड़ी से कड़ी सरदी की ऋतु मे भी, सोने के पहले शैत्य को दूर करने के लिए, केवल पाँच मिनट पर्याप्त होते थे। यदि उसे कभी रात्रि मे कमरे से बाहर जाने का अवसर होता (क्योंकि गरमी और सरदी मे वह सदा दिन-रात अँधेरा रखा जाता था), तो वह एक रस्सी के सहारे दूसरे कमरे मे जाता। यह रस्सी रोज़ रात्रि को उसकी खाट के साथ बाँध दी जाती थी।

काँट को दिन-रात में कभी पसीना नहीं आता था। आश्चर्य की बात है कि उसे अपने अध्ययन के कमरे में कितनी गरमी सहन करने का स्वभाव हो गया था। उस गरमी में एक अंश कम होने पर भी उसे चैन न पड़ता था। जिस कमरे में वह मुख्यतः रहता था उसका तापमान सदा पचहत्तर अंश फैरनहीट होता था। शरीर मे रक्त के अभिसरण मे वाधा पड़ने के डर से वह मोज़ों को गेटिस नहीं बाँधता था।

गरमी हो चाहे सरदी, पाँच बजे से ठीक पाँच मिनट पहले, काँट का प्यादा, लेम्प, जो पहले सेना मे नौकर रह चुका था, पहरे पर सन्तरी के सदृश, अपने स्वामी के कमरे मे प्रवेश करता था, और सैनिक ढङ्ग से उच्च स्वर मे कहता था—"अध्यापकजी, समय हो गया।" इस आज्ञा का पालन काँट, बिना किसी विलम्ब के, उसी प्रकार करता था जिस प्रकार कोई सैनिक अपने अफसर की आज्ञा का करता है—किसी अवस्था

में, यहाँ तक कि रात का उनींदा होने पर भी, वह अवकाश न लेता था। ज्योंही घड़ी पाँच बजाती, काँट कलेवा के लिए बैठ जाता, और चाय का प्याला पीता। कहने को वह उसे चाय का एक प्याला कहता था परन्तु गम्भीर चिन्ता मे मग्न होने के कारण, वास्तव में, वह दो, तीन, वरन् चार प्याले पी जाता था। इसके बाद वह तम्बाकू पीता (धूम्रपान वह दिन मे केवल एक ही बार करता था) और इतनी शीघ्रता के साथ कि बहुत सा तम्बाकू वैसे का वैसा बिना बुझा ही रह जाता। इस बीच में वह दिन की व्यवस्था पर विचार करता, जैसा कि उसने कल सन्ध्या-समय किया था। कोई सात बजे वह सामान्यतः अपने पढ़ाने के कमरे में चला जाता और वहाँ से अपने लिखने की मेज़ पर। ठीक पौन बजे वह कुरसी पर से उठता और जोर से रसोइए को पुकारकर कहता—"पौन बज गया।" इस आज्ञा का अर्थ यह होता था—भोजन मे, और शोरबा पीने के पीछे तुरन्त, उसे सुरापान का स्वभाव था। "पौन बज गया" सुनते ही रसोइया मदिरा का भरा प्याला ले आता था।

काँट का भोजन सदा एक सा होता था और उसके अन्य स्वभाव नियमित थे। इस बात ने उसके जीवन को दीर्घ बनाने मे बड़ी सहायता दी। इसी कारण वह अपने स्वास्थ्य तथा वृद्धावस्था को अपने ही उद्यम का फल समझने लगा था। वह कहा करता था कि मैं एक ऐसा नट हूँ जिसने लगभग अस्सी

वर्ष तक अपने आपको जीवन रूपी कसे हुए रस्से पर सन्तुलित रक्खा है, और जो एक बार भी दाईं अथवा बाईं ओर को नहीं हटा। उन सब रोगों के रहते हुए भी, जिनका शारीरिक प्रवृत्तियों के कारण वह शिकार हो सकता था, उसने जीवन मे सफलता-पूर्वक अपनी स्थिति को बनाये रक्खा। स्वास्थ्य का इतना ध्यान रखने के कारण ही वह चिकित्सा-शास्त्र के सभी नवीन आविष्कारों अथवा प्राचीनों के आधार पर नवीन सिद्धान्त गढ़ने मे इतनी दिलचस्पी रखता था।

धीरे धीरे बुढ़ापे की निर्बलताएँ काँट पर अधिकार जमाने लगीं। बौद्धिक बातों के सम्बन्ध में काँट की स्मरण-शक्ति बड़ी अद्भुत थी, परन्तु दैनिक जीवन की सामान्य बातों के सम्बन्ध मे उसकी यह शक्ति युवावस्था से ही दुर्बल थी। बाल्य-काल से ही इस सम्बन्ध में उसके अनेक उदाहरण लिखे मिलते है। अब यह दूसरा बाल्यकाल आरम्भ होने पर उसकी वह असमर्थता और भी बढ़ गई। पहले पहल इसका एक लक्षण यह प्रकट हुआ कि वह एक ही दिन मे उन्हीं कहानियों को बार-बार सुनाने लगा। स्मरण-शक्ति की इस असमर्थता का ज्ञान उसे भी हो गया। इसका उपाय करने और अपने अतिथियों को वही बातें बार-बार सुनाकर उकताने से बचने के लिए वह कार्डों पर, लिफाफों पर, और जो भी काग़ज़ का फटा टुकडा मिल जाय उस पर, प्रत्येक दिन के लिए, बात-चीत के विषयों की सूची लिखने लगा। परन्तु इन चिटों या काग़ज़ के

टुकड़ों का उसके पास इतनी जल्दी ढेर लग गया, या वे समय पर खो जाने लगे कि एक मित्र के सुझाने पर उसने कोरे कागजों की एक नोटवुक अपने पास रख ली। ऐसी दशाओं मे, जैसा कि वहुधा होता है, वह लम्बी-लम्बी जर्मन और लैटिन कविताएँ तो वड़ी आसानी के साथ स्मृति से सुना सकता था, परन्तु एक मिनट पहले कहे हुए शब्दों को भूल जाता था। भूत काल तो आसन्न अस्तित्व की स्पष्टता एवं उत्फुल्लता के साथ आगे आ रहा था, और वर्तमान काल अनन्त दूरी की अस्पष्टता मे लुप्त होता जा रहा था।

काँट को अपनी शक्तियों के ह्रास का पूर्ण ज्ञान था। यहाँ तक कि सन् १७९९ मे उसने एक वार अपनी मित्र-मण्डली से कहा था—"सज्जनो! मै वृद्ध, दुर्वल और वालिश हूँ, इसलिए आपको चाहिए कि मेरे साथ वालकों का सा ही वर्ताव करें।" शायद कोई समझे कि काँट मृत्यु के ध्यान से ही सिकुड़ जाता था, जो कि किसी समय भी आ सकती थी; क्योंकि उसके सिर मे पीड़ा रहने से उसे अपस्मार हो जाने का भय था। परन्तु यह वात न थी। वह निरन्तर समर्पण की अवस्था में रहता था और विधाता के प्रत्येक आदेश के सामने नतमस्तक होने को तैयार था। एक दिन उसने अपने अतिथियों से कहा—"सज्जनो, मैं मरने से नहीं डरता। मै परमेश्वर को साक्षी करके कहता हूँ कि यदि आज रात को ही सहसा मुझे मृत्यु का वुलावा आ जाय, तो मैं उसे वड़ी शान्ति के साथ सुनूँगा, और आकाश

की ओर हांथ उठाकर कहूँगा, प्रभु, आप धन्य हैं ! यदि वास्तव में यह सम्भव हो कि इस प्रकार की कोई कानाफूसी मेरे कान में पड़ सके—तुम अस्सी वर्ष संसार मे रहे, और इस काल में तुमने अपने बन्धुओं का बहुत अनिष्ट किया, तो अवस्था इसके विपरीत होगी।" कॉंट अपनी मृत्यु के विषय मे जब बात करता था, उसकी रीति एव भावभङ्गी से सच्ची निष्कपटता टपका करती थी।

अपने आरम्भिक जीवन में कॉंट को अपना प्रतिवाद सुनने का स्वभाव कम था। उसकी महान् बुद्धि, उसका मनोहर सम्भाषण—जिसका आधार कुछ तो उसकी प्रत्युत्पन्न वरन् कभी-कभी मर्मवेधी मति था और कुछ ज्ञान पर उसका अद्भुत अधिकार—श्रेष्ठ आत्मविश्वास का वह रूप जिसकी छाप उसकी कार्य-शैली पर लगी थी, और अपने जीवन की कड़ी विशुद्धता के साथ सामान्य परिचय—ये सब बातें मिलकर उसे दूसरों से श्रेष्ठता का स्थान देती हैं। इसी कारण कोई खुल्लमखुल्ला उसका प्रतिवाद नहीं कर सकता था। यदि कभी उसे कोई झगड़ालू या असंयमी प्रतिवादी मिल जाता, जो प्रत्युत्पन्नमति होने का दिखलावा करता, तो वह उस प्रकार के लाभहीन वादविवाद से शान्तिपूर्वक हट जाता, और वार्तालाप को ऐसे ढङ्ग से दूसरी ओर को फेर देता जिससे सारी मण्डली प्रसन्न हो जाती, और धृष्ट से धृष्ट विवादकारी पर भी मौन, या कम से कम नम्रता की छाप लग जाती।

लेम्प नाम का काँट का एक पुराना नौकर था। वह चालीस वर्ष से उसके पास था। यद्यपि वह आलसी और मूर्ख था, तो भी आरम्भ में वह वड़ी भक्ति के साथ अपने कर्तव्य का पालन करता था। परन्तु वाद को यह समझ कर कि मेरे विना इसका काम नहीं चल सकेगा, साथ ही घरेलू प्रवन्ध का पूर्ण ज्ञान हो जाने से, और अपने स्वामी की निर्वलता का लाभ उठाकर वह वहुत अनियमता और उपेक्षा करने लगा था। इसलिए काँट को उसे वार-वार निकाल देने की धमकी देनी पडती थी। काँट यद्यपि वड़ा दयालु था परन्तु वह साथ ही अपने निश्चय का पक्का भी वहुत था। उसका वचन उतना ही पवित्र था जितनी दूसरों की शपथ। काँट के मित्रों ने और लेम्प की स्त्री ने लेम्प को वहुतेरा समझाया, परन्तु वह न सुधरा। कॉट दिन पर दिन वुढ़ापे से दुर्वल होता जा रहा था, इसलिए उसे लेम्प जैसे वूढ़े उच्छृङ्खल व्यक्ति के हाथ में छोड़ना, जो स्वयं भी मदिरापान से अचेत होकर गिर पड़ता था, भयावह जान पड़ा। इधर लेम्प दिन पर दिन और भी अविनीत और लापरवा होता गया। एक दिन जनवरी सन् १८०२ मे काँट ने अपने एक मित्र से शिकायत की कि यह स्वीकार करते मैं मिट्टी मे मिला जाता हूँ कि लेम्प ने मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया है कि उसे मुँह से कहते मुझे लज्जा होती है। फलतः लेम्प को अलग कर दिया गया और उसे जन्म भर के लिए अच्छी पेन्शन दे दी गई।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है। कॉट की धारणा थी कि लेम्प आजन्म मेरे पास रहेगा। इसलिए उसने अपनी अन्तिम वसीयत मे लेम्प के लिए प्रचुर सम्पत्ति लिख दी थी। परन्तु पेन्शन के इस नये प्रबन्ध से वसीयत के उस अंश को मन्सूख़ कर देना आवश्यक था। उसने वसीयतनामे के पृथक् उपाङ्ग मे उसे इस प्रकार लिख दिया—"अपने नौकर लेम्प के दुर्व्यवहार के कारण, मैं यह उचित समझता हूँ," इत्यादि। परन्तु इसके उपरान्त ही उसे विचार आया कि लेम्प के दुर्व्यवहार के सम्बन्ध मे ऐसा सुचिन्तित और गम्भीर लेख, सम्भव है, उसके स्वार्थों के लिए घोर हानिकारक सिद्ध हो। इस पर उसने वह वाक्य काट डाला और उसे ऐसे ढङ्ग से बदल दिया कि उसके समुचित रोष का कोई भी चिह्न शेप न रह गया। उसकी दयालु प्रकृति यह जानकर सन्तुष्ट हुई कि इस एक वाक्य को मिटा देने से उसके बहुसंख्यक प्रकाशित या गुप्त लेखों मे दूसरा कोई भी ऐसा वाक्य नहीं रहा जिससे उसका क्रोध टपकता हो या जिससे इस बात मे तनिक भी सन्देह होता हो कि सारे संसार मे किसी के साथ भी उसकी शत्रुता न थी। लेम्प ने जब काँट से प्रशंसा-पत्र देने की प्रार्थना की तो काँट को बड़ी घबराहट हुई। काँट सत्य का कट्टर पुजारी था। इस अवस्था मे उसके सत्यानुराग को उसकी दयालुता के आवेग के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। सरटीफिकेट को आगे रक्खे वह देर तक बैठा सोचता रहा कि मैं इसमें क्या लिखूँ। अन्त को उसने लेखनी उठाई और इस

प्रकार लिख दिया—"—ने चिरकाल तक और निष्कपटता-पूर्वक मेरी सेवा की है।" (क्योंकि काँट को पता नहीं था कि लेम्प ने उसे लूटा भी था) "परन्तु उसने वे विशेष योग्यताएँ नहीं दिखलाईं जो उसे मेरे ऐसे वृद्ध और अशक्त व्यक्ति की सेवा करने के योग्य ठहरातीं।"

लेम्प को निकाल देने के बाद कौफमैन नाम का एक दूसरा नौकर रक्खा गया। यह भला मनुष्य था। घर और भाण्डार मे पहले जो कोलाहल, कड़े एवं क्रोधभरे शब्द और व्यर्थ की झकझक सुनाई दिया करती थी, वह सब इसके आने से बन्द हो गई। फिर भी काँट को अठहत्तर वर्ष की आयु मे किसी प्रकार का परिवर्तन, चाहे वह पहले से अच्छा ही क्यों न हो, अच्छा न लगता था। उसके जीवन तथा स्वभाव की एकरूपता इतनी प्रचण्ड थी कि चाकू और कैंची जैसी तुच्छ सी वस्तुओं के विन्यास में तनिक सी भी नवीनता लाने से वह अशान्त हो जाता था; यही नहीं कि उनको उनकी मामूली जगह से दो-तीन इञ्च इधर उधर हटा देने से, वरन् उन्हे थोड़ा तिरछा रख देने से भी। कुरसी जैसी बड़ी चीज़ों को अपने साधारण स्थान से इधर उधर खसका देने, उनको अदल बदल देने, या उनकी संख्या में वृद्धि कर देने से वह विलकुल हक्का-वक्का हो जाता था, और उसकी आँखें बेचैनी के साथ उस कुव्यवस्था के स्थान पर वार बार पडती रहती थीं, जव तक कि उनको फिर उसी क्रम मे नहीं रख दिया जाता था। ऐसे स्वभाववाले मनुष्य के

सम्बन्ध में पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि उसके लिए इस आयु में, जब कि सभी शक्तियो का ह्रास हो रहा था, अपने को नये नौकर, नई आवाज़, नई बात, इत्यादि के अनुकूल बनाना कितना दुःखदायक था।

वसन्त मे बहुत से परिवर्तन होते हैं। परन्तु उनमें से केवल एक मे ही कॉट को दिलचस्पी थी। वह उसके लिए उत्सुकता और तीव्र प्रतीक्षा के साथ तरसा करता था, यहाँ तक कि उसे न देखकर वह दुखी हो जाता था। एक पक्षी, शायद गौरैया या लाल छातीवाला रोबिन, वसन्त ऋतु में उसकी वाटिका में आकर उसकी खिड़की के सामने गाया करता था। वर्षों से वह इसी स्थिति मे आकर गाता था। शरद् ऋतु के लम्बा हो जाने से पक्षी के आगमन में देर हो जाने पर कॉट व्याकुल हो उठता था। वास्तव मे कॉट को पक्षी-मात्र से बच्चों जैसा प्रेम था। विशेषतः वह गौरैया को अपने अध्ययन के कमरे की खिडकियों पर घोंसला बनाने के लिए उत्साहित किया करता था। जब वे घोंसला बना लेती थीं तो वह उनके काम को उसी प्रसन्नता और वात्सल्य के साथ देखा करता था जिससे कि दूसरे मनुष्य अपने बच्चों को देखते हैं।

सन् १८०२-३ की शरद् ऋतु के आते ही उसे उदर-व्याधि बहुत दुःख देने लगी। वह जीवन से तङ्ग आकर निधन की कामना करने लगा। वह कहने लगा—"मै अब संसार के किसी काम का नहीं, मैं अपने लिए भी भार हूँ।" शरत्काल

की समाप्ति पर उसे बड़े भयानक स्वप्न होने लगे। इनसे घबराकर वह जाग उठता था। जो गीत उसने बचपन मे कोनिग्सबर्ग की गलियों मे सुने थे वही अब फिर उसके कानों मे आने लगे। कभी कभी स्वप्न मे उसे ऐसा देख पड़ता कि वधिक उसकी हत्या करने के लिए उसके कमरे मे घुस रहे है। उसके नौकर के कमरे मे घण्टी लगी थी। ऐसे अवसर पर वह रस्सी खींचकर घण्टी बजाता और उसे बुला लेता।

कॉंट अपने नौकरों को इनाम-इकराम खूब दिया करता था। कारण यह कि वह तभी प्रसन्न रह सकता था जब उसके इर्द-गिर्द के लोग भी सुखी हों। धन के व्यय मे कॉंट राजाओं से कम नही था। वह गली के भिखमङ्गों को पैसा देने के, सिद्धान्त रूप से, विरुद्ध था। परन्तु सार्वजनिक परोपकार की संस्थाओं को वह दिल खोलकर दान देता था। गुप्त रूप से वह अपने सगे-सम्बन्धियों की बहुत उदारतापूर्वक सहायता किया करता था। उसने अनेक लोगों को पेन्शन दे रक्खी थी। इसका ज्ञान जनता को तब हुआ जब वार्धक्य के कारण उसकी देखने-सुनने की सारी शक्तियाँ शिथिल हो गईं और पेन्शन पहुँचाने का काम उसे अपने एक मित्र के सपुर्द करना पड़ा।

कॉंट ने अपनी मृत्यु से कुछ काल पूर्व वसीयत की थी कि मेरी अर्थी सवेरे के समय निकाली जाय; जहाँ तक हो सके, कोलाहल और गडबड़ न हो, और उसके साथ मेरे थोड़े से अन्तरङ्ग मित्र ही हों। जिस मित्र को यह वसीयत दी गई,

उसने इसे पढ़कर कॉट से कहा कि इसके अनुसार आचरण होना सम्भव नहीं, क्योंकि वह जानता था कि विश्वविद्यालय के छात्र इस परम विद्वान् के सम्मान के तौर पर इसकी अर्थी के साथ गये विना न रहेंगे। इसलिए कॉट को वह वसीयत फाड़ डालनी पड़ी। मित्र का अनुमान ठीक निकला। कॉट की अर्थी के साथ इतना बड़ा जुलूस निकला कि आज तक कोनिग्स-वर्ग में कभी न निकला था और न शायद निकले ही।

पक्षियों का मित्र एक्सल मुन्थ

["दि स्टोरी ऑव सान मिचल" के आधार पर]

भगवान् की सृष्टि बड़ी विचित्र है। इसमे क्रूर से क्रूर और दयालु से दयालु मनुष्य मिलते हैं। इसमें ऐसे भी निर्दय मनुष्य हैं जिनका काम ही जीवों की हिंसा करना है और ऐसे भी हैं जो प्राणिमात्र पर अपनी ही आत्मा के समान प्रेम रखते हैं। बूचड़ों और क़साइयों को पशु-पक्षियों का वध करने में रत्ती भर भी मानसिक दुःख नहीं होता। इनके विपरीत ऐसे भी दयावान् पुरुष हैं जो रोज़ पक्षियों को चारा डालते हैं और रोगी हो जाने पर उनकी चिकित्सा कराते हैं। ऐसे ही एक देवात्मा की कृपा से आज केपरी का टापू पक्षियों के लिए स्वर्ग बन रहा है।

केपरी का टापू विसूवियस नाम के प्रसिद्ध ज्वालामुखी पर्वत के नीचे, नेपल्स की खाडी मे, है। यह इटली के अधिकार मे है। इसका सौन्दर्य बहुत ही मनोहर है। दूर-दूर से लोग इसे देखने आते हैं। परन्तु बहुत कम लोगों को पक्षियों की उस भीषण हत्या का ज्ञान है जो यहाँ सैकड़ों वर्ष तक होती रही है। कुछ वर्ष हुए "दि स्टोरी आफ सान मिचल" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इसने अपने लेखक डा० एक्सल

सुन्थ को न केवल प्रसिद्ध कर दिया है, वरन् जनता का प्रेम-पात्र भी बना दिया है। इस पुस्तक मे डाक्टर साहब ने दीन पक्षियो की दुःख-भरी गाथा दुनिया को सुनाई है। उनकी पुस्तक से और उनके अथक उद्योग से आज केपरी मे पक्षियो का सर्ववध बन्द हो गया है और इटली की सरकार ने इस टापू को भूमध्य सागर मे पक्षियों के लिए एक बड़ा अभय आश्रम बना दिया है।

ईसाइयो के पुण्य पर्व ईस्टर पर पक्षियों के साथ विशेष रूप से निर्दयता हुआ करती थी। ईस्टर से कई दिन पहले गाँव के छोकरे पक्षियों के पॉव मे रस्सी बॉध कर घसीटा करते थे; कई पक्षी इसी मे मर जाते थे। ईस्टर के दिन गिरजों के द्वार बन्द करके उनमे पक्षी छोड़ दिये जाते थे। वे बेचारे बाहर निकलने के लिए रास्ता ढूँढ़ते हुए पङ्खों को फड़फड़ाते थे। दीवारों के साथ टकराने से उनके सिर फट जाते और वे मर-कर गिर पड़ते थे। परन्तु दर्शक इस पर प्रसन्न होते थे। कभी कभी इस प्रकार एक दिन मे ४००० तक पक्षियों की हत्या हो जाती थी।

यह कर्म क्रूरतापूर्ण अवश्य था परन्तु पक्षियों के देशान्तर-गमन के समयों मे वर्ष मे दो बार होनेवाले सर्ववध के सामने यह कुछ भी न था। इससे टापू को बड़ी आय होती थी। सब जातियों के पक्षी—खञ्जन, चण्डूल, अबाबील, पण्डुक, तिलियर, थ्रूश और बटेर—अफ़्रीका मे शीतकाल काटकर वसन्त-

ऋतु में उत्तर को आ जाते हैं। वहाँ आकर वे अण्डे देते, बच्चे पालते और उनको साथ लेकर पतझड़ में वापस लौट जाते हैं। वे केपरी के पर्वतों की ढलानों पर सहस्रों की संख्या में उतरते थे। सारे टापू पर जाल फैलाये रहते थे और वे बेचारे उनमें फँस जाते थे। तब वे लकडी के छोटे छोटे सन्दूक़ों मे, भूखे और प्यासे, भर दिये जाते थे और स्वादिष्ट भोजन वनने के लिए योरप की राजधानियों के फैशनेबल होटलों मे भेज दिये जाते थे।

सबसे अधिक माँग बटेरों की रहती थी। सन् १०३३ मे पोप ने पहले पहल अपना बिशप इस टापू मे भेजा था और उससे स्पष्ट कह दिया था कि उस टापू पर टैक्स लगाने से जो कुछ मिलेगा वही तुम्हारी आय होगी। इससे प्रकट है कि उस समय भी पक्षियों का व्यापार ख़ूब जोरों पर था। बिशप दस पक्षियों के पीछे एक पक्षी या उसका मूल्य टेक्स में ले लेता था। वह और उसके वाद आनेवाले बिशप केपरी के बटेर-वाले बिशप के नाम से प्रसिद्ध हो गये। सामान्यतः इस टैक्स से उन्हे बहुत अच्छी आय हो जाती थी। इससे पता लगता है कि बहुत वड़ी संख्या में बटेरे पकड़ी जाती थीं।

जिस समय एक्सल मुन्थ पहले पहल जाकर इस टापू पर वसे और उन्होंने अपनी सान मिचल की कुटी वनाई, उस समय पक्षियों का वाणिज्य पूरे जोरों पर था। पक्षी केवल जाल द्वारा ही नहीं, वरन् एक बहुत ही सूक्ष्म धोखे से पकड़े जाते थे। इस धोखे का नाम है 'बुलारा' लगाकर बटेर पकड़ना। अनु-

भव ने एक अनोखे और बहुत बुरे रहस्य का प्रकाश किया था। वह यह कि यदि मादा बटेर की आँखें सुई को गरम करके जला डाली जायँ तो वह दिन-रात गाने लगती है। इन अन्धी की हुई मादा बटेरों को पिजड़े में बन्द करके जाल के पास लटका देते थे। तब इनकी प्रणय-पुकार समुद्र पर दूर तक सुनाई देती थी और दूर-दूर से बटेरों को मृत्युमुख में खींच लाती थी। मादा बटेरों की आँखें जलाना बड़ी कारीगरी का काम था। इसमें सैकड़ों पक्षी मर जाते थे। केवल एकाध जीता बचता था। फलतः ऐसी अन्धी बनाई हुई मादा बटेर का मूल्य बहुत अधिक होता था।

टापू मे एक मनुष्य ऐसा था जो इस कला मे बहुत निपुण था। वह पहले बूचड़ का काम किया करता था। सान मिचल की पहाड़ी पीठ का भी वही स्वामी था। उसकी ढलानों पर बहुत से पक्षी पकड़े जाते थे। इन दोनों बातों के कारण वह धनवान् हो गया था। डाक्टर मुन्थ ने इस पहाड़ को लेने के लिए बहुत हाथ-पाँव पटके—उसने इसे ख़रीदने का पूरा प्रयत्न किया; परन्तु भूतपूर्व बूचड़ ने उसके वास्तविक मूल्य से कई गुना अधिक दाम माँगे। एक्सल मुन्थ ने जब चन्दा करके रुपया इकट्ठा कर लिया तब वह बूचड़ हँसने लगा। अब उसने पहाड़ी का मूल्य दुगुना कर दिया।

डाक्टर महोदय चाहते थे कि बटेरों का जाल से पकडना और उनकी आँखे निकालना बिलकुल बन्द हो जाय। इसके

लिए वे उच्च पदाधिकारियों की सहायता लेने टापू से बाहर गये; परन्तु उन्हे सफलता न हुई। उन्होंने नेपल्स के पुराध्यक्ष से और रोम मे सरकार से अपील की। फिर पोप से अपील की। परन्तु पोप ने अपने एक कार्डिनल द्वारा उत्तर भेजा कि मैंने एक दिन सबेरे वेटिकन उद्यान मे पक्षियों को जाल द्वारा पकड़ने की क्रिया देखी थी। मैं उसे देखकर वहुत प्रसन्न हुआ था। कोई २०० पक्षी पकड़े गये थे।

विफलता से डाक्टर महोदय हताश नहीं हुए। वे अपने टापू को लौट आये। उन्होंने अपने कुत्तों को ऐसा सधाया जिससे वे रात भर भौंकते रहे और पक्षियो को उड़ा दे। तब उनके कुत्तों को विष दे दिया गया और उन पर जुर्माना किया गया। अन्त को उन्हे एक अवसर हाथ लगा। वूचड़ वीमार होकर मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। उसने वहुतेरा इलाज किया। नगर का कोई डाक्टर न छोड़ा; परन्तु आराम न हुआ। अन्त को निराश होकर उसने डाक्टर एक्सल मुन्थ को वुला भेजा। डाक्टर साहव ने कहा कि मैं केवल एक शर्त पर आ सकता हूँ और वह यह है कि तुम चङ्गे हो गये तो फिर कभी किसी वटेर की आँखें नहीं निकालोगे और उस पर्वत को अपने रक्खे हुए अतिमात्र मूल्य पर ही वेच दोगे। वूचड़ ने वचन दे दिया और डाक्टर की चिकित्सा से वह चङ्गा हो गया। अव पर्वत डाक्टर मुन्थ के हाथ मे चला गया। फलतः गत पैंतीस वर्ष से वह पक्षियों का स्वर्ग वना हुआ है। उसकी ढलानें

पहले बिलकुल नङ्गी थी। डाक्टर साहब ने उन पर पेड़ लगा-कर पर्वत को जङ्गल से ढक दिया है। दूर की यात्रा से थके हुए लाखों पत्ती यहाँ आकर बसेरा लेते हैं। यहाँ इन्हें कोई न तो जाल मे फँसा सकता, न फन्दे से और न गोली से मार सकता है।

एक्सल मुन्थ को यश-प्राप्ति से ही सन्तोष नहीं हुआ है। वर्षों से वे अनुभव करते थे कि भूमध्यसागर मे कोई ऐसा स्थान प्राप्त हो जहाँ जाकर पत्ती चैन से रह सके। यह बहुत अच्छा हुआ कि जिस रमणीक टापू पर सैकड़ों वर्ष तक पक्षियों का इस प्रकार निर्दयतापूर्वक सर्ववध होता रहा था वहीं अब सदा के लिए सुख और स्वतन्त्रता का आश्रय बन गया है। 'दि स्टोरी आफ सान मिचल' के इटालियन संस्करण की भूमिका मे की हुई प्रार्थना ने वह काम कर दिया जो आयु भर का उद्योग न कर सका था। इसी के परिणाम-स्वरूप मुसोलिनी ने राजाज्ञा निकालकर केपरी के टापू को सदा के लिए पक्षियो का अभयदायक आश्रय बना दिया है।

डाक्टर मुन्थ जहाँ दया के सागर हैं वहाँ उनका त्याग भी अलौकिक है। उनकी पुस्तक, दि स्टोरी आफ सान मिचल, बहुत अधिक बिकी है। इसे छपे यद्यपि नौ वर्ष हो चुके हैं फिर भी लोगों की दिलचस्पी का यह हाल है कि डाक्टर मुन्थ के पास इसके लिए प्रति मास सहस्रों चिट्ठियाँ आती हैं। इधर आपके त्याग की यह अवस्था है कि पुस्तक से जितनी भी

आय होती है वह सब तत्काल तीन कार्यों के लिए दान कर दी जाती है। उनमें से एक काम है परमेश्वर के पंखदार दूतों अर्थात् पक्षियों के लिए अभयदायक आश्रय बनाना, दूसरा डाक्टर मुन्थ की जन्मभूमि उत्तर के लाप लोगों की रक्षा, और तीसरा, संसार भर के अन्धों की सहायता। डाक्टर महोदय की आँखें अब प्रायः बन्द सी हो गई हैं। वे केपरी टापू में एक बड़े भारी पुराने मीनार के नीचे एकान्तवास कर रहे हैं। वे किसी भी दर्शक से नहीं मिलते और पत्रों मे से केवल बहुत थोड़ों का उत्तर देते हैं। संसार भर के पुस्तक-प्रकाशक उनसे पूछ रहे हैं—"अगली पुस्तक कब तक मिलेगी?" परन्तु उनको भी कोई उत्तर नहीं मिलता। प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रिकाओं के प्रतिनिधि सागर पार करके उनके पास जाते हैं, ताकि चाहे जिस मूल्य पर उनसे अपनी पत्रिका के लिए कोई लेख प्राप्त करें। परन्तु उनका परिश्रम सब निष्फल जाता है। डाक्टर मुन्थ अनेक भाषाओं के पण्डित हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक के फ्रेञ्च, जर्मन, नार्वेजियन और इटालियन भाषान्तरों का सशोधन स्वयं किया है। इटालियन भाषा पर तो उनको उतना ही अधिकार प्राप्त है जितना इँग्लिश या अपनी मातृ-भापा स्वीडिश पर। परन्तु सच तो यह है कि उनकी यह साहित्यिक प्रतिभा उनके बहुत ही उद्यमशील जीवन का एक गौण सा फल है। उनका जीवन तो अधिकतर मानव-समाज की सेवा मे ही बीता है। डाक्टर मुन्थ पैरिस में प्रैक्टिस करते थे। डाक्टरी से

उनको बहुत अच्छी आय थी। नेपल्स की तङ्ग गलियों में प्लेग हुआ। सब लोग डर के मारे भाग गये। परन्तु डा० मुन्थ भरी जवानी मे अपनी प्रैक्टिस छोड़कर रोगियें की सेवा के लिए नेपल्स चले गये। उन्होंने अपने जीवन में जो भी काम किया, उत्साह और निर्भयता के साथ किया। इस समय उन्नासी वर्ष की आयु में यद्यपि वे अन्धे हो गये हैं, फिर भी, सुना है, वे दो नई पुस्तकें तैयार कर रहे हैं।

डाक्टर मुन्थ आज बेशक अन्धे और बुड्ढे हैं, परन्तु उनका मन आनन्द से परिपूर्ण होगा। केपरी द्वीप में पक्षियो को अभय होकर मीठे स्वर से गाते सुनकर उनके हर्ष की कोई सीमा न रहती होगी।

शिवाजी

शिवाजी

१६ एप्रिल सन् १६२७ से ३ एप्रिल १६८० तक

मालोजी राव अहमदनगर के सुलतान मुर्तज़ा निज़ामशाह द्वितीय के यहाँ नौकर थे। उनका विवाह भी उसी दरबार के एक उच्च पदाधिकारी की वहन के साथ हुआ था। उनके पुत्र का नाम शाहजी था। अहमदनगर में लाखोजी यादव नाम के एक बड़े धनी और प्रतिष्ठित सज्जन रहते थे। उनके मकान पर होली में वड़ी धूमधाम होती थी। सन् १५९९ की होली में लाखोजी की लड़की जीजाबाई दौड़-दौड़कर शाहजी पर रङ्ग डालने लगी। वह भी उसे पकड़ने के लिए दौड़ता और रङ्ग डालता था। दोनों खड़े हँस रहे थे कि उधर से लाखोजी आ निकले। उन्हे इस प्रकार खेलते देख वे वहुत प्रसन्न हुए। अनायास उनके मुख से निकल पड़ा—कैसी अच्छी जोड़ी है! इस पर मालोजी ने लाखोजी से जीजाबाई का विवाह शाहजी के साथ कर देने का प्रस्ताव किया। परन्तु लाखोजी दसहज़ारी अफसर थे और मालोजी एक साधारण सिपाही। लाखोजी तो शायद इस प्रस्ताव को स्वीकार भी कर लेते परन्तु उनकी स्त्री म्हालसाबाई ने इसे अपना अपमान समझा। उसके इनकार कर देने पर मालोजी और लाखोजी में मनोमालिन्य वढ़ गया।

जब सुलतान ने यह सुना तो उसने इस झगड़े को शान्त करने के लिए मालोजी को पञ्चहज़ारी का पद और पूना तथा सूपा की जागीर देकर लाखोजी के बराबर कर दिया। इस प्रकार लाखोजी को जीजाबाई का विवाह शाहजी के साथ करने मे जो आपत्ति थी वह दूर हो गई। सन् १६०४ में बड़ी धूम-धाम से दोनों का विवाह हो गया।

१६ एप्रिल सन् १६२७ को शिवनेर के दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ। शाहजी ने सन् १६३० में एक और विवाह कर लिया। इसलिए जीजाबाई ने रूठकर उससे अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। वह पूना मे जाकर रहने लगी। शिवाजी का विवाह दस ही वर्ष की आयु मे विठोबा मोहते की लड़की यसूबाई से कर दिया गया था। एक दिन बीजापुर के बाज़ार में एक बूचड़ सरे बाज़ार गो-मांस बेच रहा था। शिवाजी ने उसे मना किया, परन्तु वह न माना। इस पर शिवाजी ने उसका वहीं वध कर डाला। फिर उसने बीजापुर के सुलतान को झुककर सलाम करने से इनकार कर दिया। इन बातों से सुलतान अप्रसन्न हो गया। शाहजी ने समझा-बुझाकर उसे शान्त तो कर दिया परन्तु डर के मारे शिवाजी को उसकी माता के पास पूना भेज दिया ताकि वह कोई और उपद्रव न कर बैठे।

पूना की जागीर की देख-रेख दादाजी कोंड़देव नाम के एक विद्वान् के सिपुर्द थी। वह बडा ईमानदार था। कहते हैं, एक समय वह वाटिका में घूम रहा था कि एक पके हुए आम

पर उसकी दृष्टि पड़ी। अनायास उसका हाथ उस ओर चला गया। उसने आम तोड़ लिया। बाद को उसे इस चोरी के लिए इतना दुःख हुआ कि उसने अपने साथियों से कहा कि मेरा दाहिना हाथ काट दो। उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया। परन्तु कई मास तक उसने अपना वह हाथ नङ्गा रक्खा ताकि उसे चोरी का दण्ड मिले। अन्त को शाहजी के अनुरोध से उसने ऐसा करना छोड़ दिया। यही कोंड़देव पूना मे शिवाजी का शिक्षक था। दादाजी ने शिवाजी के लिए पूना मे एक मकान बनवाया जिसका नाम 'रङ्गमहल' रक्खा।

शिवाजी अपने देश के पुराने वीरों की गाथाएँ सुनने का वड़ा प्रेमी था। उसे अपने साहस और निर्भीकता की परीक्षा लेने का भी वहुत शौक था। वह पहाड़ की उन चोटियों पर चढा करता और उन घाटियों मे उतरा करता था जहाँ उसके साथी पैर वढ़ाने से हिचकते थे। शिवाजी के हाथ वहुत लम्वे थे। यह असाधारण पराक्रम का लक्षण समझा जाता है।

दादाजी कोंडदेव के अतिरिक्त जिसका शिवाजी पर वड़ा प्रभाव पडा वह उसकी माता जीजाबाई थी। वह शिवाजी को रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनाया करती थी। उसने शिवाजी के हृदय में भवानी के प्रति अगाध भक्ति उत्पन्न कर दी थी। शिवाजी कई-कई मील चलकर रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनने जाता था। वह प्रत्येक समय यही समझता था कि मेरे जीवन का एक धार्मिक उद्देश्य है। अपने जीवन में

तीन अवसरों पर उसने सब कुछ छोड़कर वन को चले जाने का निश्चय किया। परन्तु मन्त्रियों और गुरुजनों के कहने पर उसे अपने निश्चय को बदलना पड़ा। किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाने पर वह ध्यान मे बैठ जाता था और अन्तरात्मा के शब्द को सुनने की प्रतीक्षा करता था। फिर उसी के अनुसार आचरण करता था। पुरन्दरपुर की कथाओं में इस विचार का ज़ोरों से प्रचार होता था कि इस्लाम की धर्मान्धता असह्य है। इन कथाओं ने शिवाजी पर असाधारण प्रभाव डाला।

गागे, मोरे, घोरपड़े आदि मराठों के विभिन्न वंश अलग-अलग पड़े थे। शिवाजी ने उनके सामने राष्ट्र-धर्म का आदर्श रक्खा। उन सब को एक प्रबल शक्ति द्वारा एकत्र कर दिया ताकि वे सब लोग सम्मिलित सफलता मे अभिमान और पराजय मे लज्जा का अनुभव करें। शिवाजी में एक प्रबल आकर्षण-शक्ति थी। इससे वीर लोग उसकी ओर उसी प्रकार खिंच आते थे जिस प्रकार लोह-कण चुम्बक की ओर खिंच आते हैं।

शिवाजी बड़ा संयमी था। उसके शासन-काल मे कभी किसी स्त्री, कृषक और गाय को दुःख नहीं दिया गया। गवा-वाड़ी गाँव के एक मराठा सरदार गोले ने विद्रोह किया। शिवाजी ने इस विद्रोह को दबा दिया। लड़ाई में गोले की बहू पकड़कर शिवाजी के सामने लाई गई। प्रत्येक नवयुवक उसके रूप की प्रशंसा करने लगा। शिवाजी ने भी उसकी प्रशंसा

करते हुए कहा कि यदि मेरे वश मे होता तो मैं इसके गर्भ से जन्म लेने की कामना करता। फिर माता के समान उसके साथ वर्ताव करके सम्मानपूर्वक उसे उसके पति के पास पहुँचा दिया।

कल्याण के सूबेदार मौलाना अहमद ने राजस्व का रुपया, थोड़े से सिपाही साथ देकर, बीजापुर भेजा। जब यह रुपया कोंकण में से होकर जा रहा था तो शिवाजी ने छापा मारकर उसे लूट लिया और दुर्ग पर चढ़ाई करके अधिकार कर लिया। अहमद की स्त्री भी वहीं थी। वह शिवाजी के सामने लाई गई। वह अपने सौन्दर्य के लिए विख्यात थी। उसे आते देख शिवाजी ने उठकर प्रणाम किया और उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहा—'यदि मेरी माँ में आपका आधा भी सौन्दर्य होता तो मैं ऐसा कुरूप न होता।' फिर उसे बहुमूल्य पदार्थ भेंट करके उसको और उसके पति को सम्मानपूर्वक बीजापुर भेजवा दिया।

इस लूट से बीजापुर का सुलतान मुहम्मद आदिलशाह बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने शिवाजी के पिता शाहजी को, जो उसके यहाँ नौकर था, पकड़ लिया और कहा कि या तो शिवाजी को मँगवा दो नहीं तो तुम्हे दीवार में चुनवा दिया जायगा। शाहजी ने बहुतेरा कहा कि, शिवाजी के उपद्रव मे मेरा कुछ भी हाथ नही, परन्तु सुलतान ने एक न सुनी। अन्त को दीवार उसकी ठुड्ढी तक चुन दी गई।

अब शिवाजी बड़े असमञ्जस में पड़ा। यदि वह बीजापुर जाय तो उसकी मृत्यु निश्चित थी। न जाय तो उसके पिता

को उसके वदले प्राण देने पड़ते। उसे एक उपाय सूझा। उसने एक दूत दिल्ली भेजकर शाहजहाँ से शाहजी के वचाव के लिए प्रार्थना की। शाहजहाँ वीजापुर से लड़ाई करना चाहता था। उसने ३० नवम्वर १६४९ को चिट्ठी लिखी। इसमे शाहजी के पिछले सव अपराध क्षमा करके उसे दिल्ली का दरवारी नियत कर दिया और साथ ही मुहम्मद आदिलशाह को उसे मुक्त कर देने को भी लिख दिया। इस पर उसे शाहजी को छोड़ना पडा ।

शिवाजी की स्त्री यसूवाई एक आदर्श महिला थी। उसका कार्य-क्षेत्र उसका घर था। सास की सेवा करना और उसकी आज्ञा पर चलना वह अपना परम कर्तव्य समझती थी।

सन् १६५६ में वीजापुर के सुलतान की मृत्यु हो गई। उस समय उसके लड़के की अवस्था १९ वर्ष की थी। सन् १६५९ मे वीजापुर की राजमाता के कहने पर उसके वहनोई अफजल खाँ ने शिवाजी पर चढाई की। वह महावली, पराक्रमी और भीमकाय था। उसके महल मे चौंसठ स्त्रियाँ थीं। चढ़ाई पर जाने के पहले उसने उन सव को नदी मे डुववा दिया ताकि उसके मरने के उपरान्त उन पर किसी की कुदृष्टि न पड़े। फिर उसने एक वड़ा पिंजड़ा वनवाया और कहा कि मैं इसमें शिवाजी को वन्द करके लाऊँगा। रास्ते में उसे जो भी मन्दिर मिलता उसे वह तुडवा डालता और गो-वध करके उसमें रक्त छिड़कवा देता।

अफजल खाँ की सेना बहुत अधिक थी। साथ ही वह छल-कपट से काम लेना चाहता था। उसने शिवाजी के पास सन्देश भेजा कि यदि तुम बीजापुर की अधीनता स्वीकार कर लो तो मैं सुलतान से तुम्हे क्षमा करा दूँगा और इस समय तुम्हारे अधिकार मे जितना प्रदेश है वह सब तुम्हारे पास ही रहने दिया जायगा। परन्तु शिवाजी को अपने विश्वास्य गुप्तचर विश्वासराव प्रभु द्वारा पहले ही उसके छल-कपट का पता चल गया था। जो लोग सन्धि का सन्देश लेकर आये थे उनमें कृष्णाजी भास्कर नाम का एक हिन्दू भी था। शिवाजी ने रात्रि में गुप्त रूप से उससे भेट करके हिन्दू-धर्म की रक्षा के नाम पर अपील कर कहा—"मैं मातृभूमि और पवित्र हिन्दू-धर्म का उद्धार करना चाहता हूँ। यह शिवाजी और अफज़ल खाँ का युद्ध नहीं, यह तो स्वतन्त्रता देवी और परतन्त्रता राक्षसी का युद्ध है।"

यह सुनकर कृष्णाजी का हृदय पिघल गया। उसने शिवाजी को बता दिया कि अफज़ल खाँ तुम्हे पकड़ना चाहता है; सन्धि की बात तो धोखे की टट्टी है। यह सुनकर शिवाजी धोखे का सामना करने के लिए तैयार हो गया।

एक निर्जन स्थान मे अफज़ल खाँ और शिवाजी के मिलने की बात तय हुई। शिवाजी ने जङ्गल कटवाकर रास्ता साफ करा दिया था; परन्तु सड़क के दोनों ओर के वन मे शिवाजी के सैनिक छिपे हुए थे। शिवाजी ने इस विचार से कि शायद

कहीं काम पड़ जाय, चलते समय "वाघनख" पहन लिया। माता ने पुत्र को विजयी होने का आशीर्वाद दिया। परन्तु ममता के कारण उसके नेत्रों में आँसू आ गये।

शिवाजी एक सुसज्जित शामियाने के नीचे अफ़ज़ल ख़ाँ का स्वागत करने के लिए खड़ा था। आते ही अफज़ल ख़ॉ ने फबती कसी कि "तेरे जैसा एक साधारण किसान ऐसा सुन्दर शामियाना कहॉ से पा सकता है?" इस पर ईंट का उत्तर पत्थर से देते हुए शिवाजी ने कहा—"यह मेरा काम है। तू, एक भठियारे का वेटा, इसे कैसे जान सकता है?"

यह सुनकर ख़ाँ ने क्रोध से अपना वायाँ हाथ शिवाजी की गर्दन पर डाला और सिर को खींचकर वग़ल में दवा लिया। साथ ही उसने शिवाजी के पेट पर तलवार से चोट की। परन्तु नीचे कवच होने से शिवाजी की रक्षा हो गई। शिवाजी अचेत होने को था, परन्तु उसे अपने गुरु समर्थ की याद हो आई। इससे उसमें साहस का सञ्चार हो गया। उसने ख़ाँ की कमर के गिर्द हाथ डालकर दाहिना हाथ ऊपर उठाया। "वाघनख" तो खाँ के पेट में और दहिने हाथ की कटार उसकी पीठ में घुस गई। ख़ाँ धड़ाम से गिर पड़ा। सम्भाजी कावजी ने दौड़कर उसका सिर काट लिया। यह देख ख़ाँ की सेना में भगदड़ मच गई। वहुत से सिपाही मारे गये और कुछ बन्दी कर लिये गये। शिवाजी खॉ का सिर लेकर अपनी माता की सेवा में पहुँचा। जीजाबाई दुर्ग के शिखर पर से सव कुछ देख रही

थी। पुत्र को विजयी होकर आते देख उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। शिवाजी ने अफज़ल खाँ के सिर को भवानी पर चढाकर भूमि मे गाड़ दिया और उस पर एक बुर्ज खड़ा किया जिसका नाम अफज़ल बुर्ज रक्खा।

इस घटना से बीजापुर-दरबार वहुत भयभीत हो गया। उसने शाहजी को शिवाजी से सन्धि की वातचीत करने भेजा। शिवाजी, माता तथा दोनों रानियों समेत, जेज़ोरी के मन्दिर मे पिता की प्रतीक्षा कर रहा था। ज्यों ही शाहजी प्रकट हुए, शिवाजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपना सिर उनके चरणों पर रख दिया। इसके उपरान्त जीजाबाई और शिवाजी की रानियों ने शाहजी का आदर-सत्कार किया। शाहजी तो पालकी मे वैठ गया, परन्तु शिवाजी नङ्गे पाँव पैदल जेज़ोरी गाँव तक गया। उसने पिता के सामने वैठने से भी इनकार कर दिया। वह हाथ जोड़े हुए सामने खड़ा रहा। उसने वार-वार पिता से उस अपराध के लिए क्षमा माँगी जिसके कारण शाहजी को बीजापुर के सुलतान ने वन्दी किया था। शाहजी ने उठकर शिवाजी को छाती से लगा लिया और कहा—"जो अपने राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए यत्न करता है उसके सव अपराध क्षम्य हैं।" जेज़ोरी से पिता-पुत्र दोनों पूना आये। यहाँ बीजापुर-सरकार ने शिवाजी की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और दोनों की सन्धि हो गई।

अव शिवाजी का वज्र मुगल-साम्राज्य पर गिरा। दिल्ली का बादशाह इस समय औरङ्गज़ेव था। वह एक विकट मनुष्य

था। उसने अपने मामा शाइस्ता ख़ाँ को एक बड़ी सेना देकर शिवाजी से युद्ध करने भेजा। शाइस्ता ख़ाँ पूना मे जाकर उसी 'रङ्गमहल' मे ठहरा जहाँ शिवाजी का वाल्यकाल वीता था। उसने शिवाजी को फ़ारसी पद्य मे एक पत्र लिखा। उसमें शिवाजी की उपमा एक ऐसे बन्दर से दी जो प्राण-रक्षा के लिए इधर-उधर भागता फिरता है। शिवाजी ने संस्कृत श्लोकों मे उसका उत्तर दिया कि मैं साधारण बन्दर नहीं वरन् हनुमान् हूँ और तुम्हारा उसी प्रकार नाश करूँगा जिस प्रकार हनुमान् ने राक्षस रावण का किया था।

शाइस्ता ख़ाँ ने पूना के चारों ओर पहरे बैठा दिये। कोई हिन्दू बिना आज्ञा लिये भीतर या बाहर नहीं जा सकता था। एप्रिल सन् १६६३ मे शिवाजी ने दो सौ चुने हुए सिपाहियों की एक बारात तैयार की। एक लड़के को दूल्हा वनाकर घोड़े पर बैठाया। आगे-आगे दूल्हा जाता था, उसके पीछे शिवाजी और उसके साथी नगाड़े और शहनाई बजाते जा रहे थे। जव आधी रात हुई और सब लोग सो गये तो वह अपने सिपाहियों को ले चुपके से रङ्गमहल मे जा घुसा और जो कोई सामने आया उसे तलवार के घाट उतार दिया। शाइस्ता ख़ाँ का बेटा अब्दुल फ़तह ख़ाँ मारा गया। शाइस्ता ख़ाँ प्राण लेकर भागा। परन्तु एक मराठे के खड्ग-प्रहार से उसकी दो उँगलियाँ कट गईं। शिवाजी अब पूना से बाहर निकला। बाहर उसकी कई सहस्र सेना छिपी बैठी थी। वह और उसके साथी उनमें जा मिले।

उन्होंने जङ्गल में, वृक्षों में, मशालें बाँध रक्खी थीं। जाते समय उन्होंने उन सबको जला दिया। इससे मुग़ल-सेना समझने लगी कि मराठों की बड़ी भारी सेना पड़ी है। जितनी देर में शाइस्ता ख़ाँ अपनी सेना को आक्रमण के लिए तैयार कर सका, उतनी देर मे शिवाजी और उसके साथी अपने सिंहगढ़ के दुर्ग मे पहुॅच चुके थे।

शाइस्ता ख़ॉ की हार से औरङ्गज़ेब बहुत चिढ़ा। उसने जयपुर के महाराज जयसिंह को शिवाजी पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। जयसिंह बड़ा वीर और नीतिज्ञ था। विलासी मुसलमान सेनापतियों की भॉति उसे पराजित करना कठिन था। इसलिए शिवाजी ने उससे सन्धि कर लेना ही उचित समझा। जयसिंह ने तुलसी की शपथ खाई कि शिवाजी का बाल बाँका न होगा। इसलिए उसके कहने पर शिवाजी, अपने पुत्र सम्भाजी को साथ ले, औरङ्गज़ेब से मिलने दिल्ली गया। परन्तु औरङ्गजेब ने धोखे से दोनों को वहॉ बन्दी कर लिया। शिवाजी ने अपने को इस प्रकार शत्रु के पञ्जे मे फँसा देख एक चाल चली। उसने रुग्ण होने का बहाना किया। फिर कुछ दिन बाद उसके स्वस्थ हो जाने का समाचार प्रसिद्ध हुआ। स्वास्थ्य-लाभ करने के उपलक्ष मे शिवाजी एक विशेष प्रकार के लम्बे लम्बे टोकरों में मिठाई और फल रखकर राजपुरुषों और ब्राह्मणों को भेजने लगा। दो-एक बार तो पहरेदारों ने टोकरों की तलाशी ली, परन्तु बाद को वे निश्चिन्त हो गये। एक दिन

अवसर पाकर एक टोकरे में शिवाजी लेट गया और दूसरे में सम्भाजी। तब उसके नौकर, मजदूरों के भेस मे, उन्हे उठाकर बाहर ले गये। शिवाजी के बजाय उसका स्वामिभक्त सेवक हीराजी फर्जन्द मुँह ढाँपकर उसके बिछौने पर लेट गया। उसका केवल वही हाथ नङ्गा था जिसमे उसने शिवाजी की अँगूठी पहन रक्खी थी। नगर के बाहर घोड़े तैयार खड़े थे। उन पर सवार हो बाप-बेटे कहीं के कहीं निकल गये। जब औरङ्गज़ेब को यह समाचार मिला तो वह हाथ मलता रह गया। शिवाजी यदि घबरा जाता और नीति से काम न लेता तो उसका शत्रु के फन्दे से छुटकारा पाना कठिन था।

शिवाजी दिल्ली से साधु-वेश में मथुरा पहुँचा। वहाँ पर वह सम्भाजी को कृष्णाजी विश्वनाथ की माता के पास छोड़ और कृष्णाजी को साथ ले काशी, प्रयाग, इन्दौर इत्यादि होता हुआ पूना जा पहुँचा। उसके आने का समाचार पाकर उसके सहस्रों अफसर और सैनिक दर्शन के लिए दौड़े आये। जीजाबाई ने पुत्र को छाती से लगाया और शासन की बागडोर उसको दे दी।

शिवाजी को अपने पुत्र की चिन्ता थी। कृष्णाजी विश्वनाथ अपनी माँ तथा सम्भाजी को लाने वापस गया। जब वे उज्जैन पहुँचे तो एक मुसलमान अफसर को सन्देह हुआ कि यह सुन्दर लड़का कहीं सम्भाजी न हो। उसने पूछा, यह कौन है? काशीजी तिरमल उनके साथ था। उसने बड़ी शान्ति के साथ उत्तर दिया—यह मेरा बेटा है। मैं अपनी माँ और स्त्री

को लेकर यात्रा के लिए प्रयाग आया था। मेरी माँ तो मार्ग में ही मर गई और स्त्री प्रयाग पहुँचकर बीमार हो गई। वहाँ उसका भी देहान्त हो गया। अब इस बच्चे को साथ लिये जा रहा हूँ। अफ़सर ने कहा कि यदि यह तुम्हारा बेटा है तो तुम इसके साथ एक थाली मे खाना खाओ। काशीजी यद्यपि ब्राह्मण था, तो भी उसने निःसङ्कोच सम्भाजी के साथ भोजन कर लिया। इस पर मुसलमान अफ़सर ने उनको जाने दिया। रायगढ़ पहुँचने पर शिवाजी ने काशीजी तिरमल को तीस सहस्र रुपया इनाम दिया।

६ जून सन् १६७४ को रायगढ में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। खुले मैदान में एक राजकीय मण्डप बनाया गया। शुभ मुहूर्त्त मे सब मन्त्री शिवाजी को लिये हुए वहाँ गये। शिवाजी श्वेत वस्त्र पहने हुए था। उसके पीछे माता जीजाबाई थी। उसके पीछे दोनों रानियाँ—सम्भाजी की माँ यसूबाई और राजाराम की माँ राजसबाई—और राजकर्मचारी थे। शिवाजी सिंहासन पर बैठ गया। मोरो पन्त पिङ्गले पूर्व की ओर घी से भरा स्वर्ण-कलश लिये खड़ा था। दूसरी ओर हमीर राव मोहिते दूध से भरा चाँदी का बर्तन लिये खड़ा था। पश्चिम की ओर रामचन्द्र नीलकण्ठ ताँबे के पात्र मे दही लिये था। उत्तर की ओर रघुनाथ पन्त था। उसके एक हाथ में मधु से भरा सोने का पात्र और दूसरे मे गङ्गाजल से भरा मिट्टी का बर्तन था। एक कोने में अन्नाजी दत्तो छत्र लिये, दूसरे में

जनार्दन पन्त पङ्खा लिये और शेष दो कोनों में दत्ताजी पण्डित और बालाजी पण्डित चँवर लिये खड़े थे। शिवाजी के सामने अमात्य बालाजी अबाजी चिटनीस खड़ा था। उसके बाये अर्थ-सचिव जमनाजी अन्नाजी था। एक-एक करके ये मन्त्री वेद-मन्त्रों के साथ अपने-अपने पात्रों मे से शिवाजी पर छींटे डालते थे। इन सबके बैठ जाने पर एक स्त्री ने जगमगाते हुए दीपक के साथ शिवाजी की आरती की। तब शिवाजी ने पहले घृत मे और फिर दर्पण में मुँह देखा। ब्राह्मणों को दान दिया। अन्त मे उसने अपनी ढाल-तलवार की पूजा की। संस्कार समाप्त हो जाने पर शिवाजी ने वस्त्र उतार दिये। तब सोलह ब्राह्मण-स्त्रियाँ और सोलह ब्राह्मण-कन्याएँ आईं। उन्होंने सुगन्धित तैल मला। गरम जल से उसके कन्धे धोये। छोटे-छोटे दीपकों से उसकी आरती उतारी। अब शिवाजी ने राज-परिच्छद धारण किया। गागाभट ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ा और उसे शामियाने से सिंहासन तक ले आया। शिवाजी शीश नवाकर उस पर बैठ गया। उसका बैठना था कि दुर्ग की तोपों ने सलामी दी। इसके बाद शिवाजी ने सोने का तुलादान किया। उसका तौल एक सौ चालीस पौण्ड था।

राज्याभिषेक के थोड़े ही दिन बाद जीजाबाई का देहान्त हो गया। उसका अन्त्येष्टि-संस्कार रायगढ़ मे किया गया परन्तु राख गङ्गाजी मे डालने के लिए प्रयाग भेज दी गई। जीजाबाई शिवाजी की सच्ची सलाहकार और सहायक थी।

२८ मार्च सन् १६८० को शिवाजी के घुटने पर सूजन सी हो गई। बहुतेरी चिकित्सा की परन्तु चङ्गा होने के स्थान मे वह बढ़ती ही गई। साथ ही ज्वर भी आने लगा। सातवें दिन, ३ एप्रिल सन् १६८० को, उसका देहान्त हो गया।

महाराष्ट्र देश मे तुकाराम एक बहुत श्रेष्ठ साधु कवि थे। उनके "अभङ्गों" (एक प्रकार के मराठी छन्दों) का शिवाजी पर गहरा प्रभाव पड़ता था। उनकी कविता सुनते-सुनते वह मुग्ध हो जाता था। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि भूषण पर भी वह लट्टू था। वह साहित्य का अच्छा मर्मज्ञ था। कहा जाता है कि भूषण के एक पद्य को शिवाजी ने बावन वार सुना था और उसे बावन लाख रुपया इनाम दिया था। भूषण का वह पद्य यह है—

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सु अम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन वारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यो सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम-दण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
'भूषण' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अ स पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ-ब्रंस पर सेर शिवराज है॥

बाल्यकाल से ही शिवाजी में साधु-सन्तों के प्रति पूज्यभाव था। वह साधु-समागम के लिए सदा उत्कण्ठित रहता था। वह अपना राजकाज करते हुए भी दूर-दूर स्थानों मे साधु-सन्तों

के दर्शनों को बार-बार जाया करता था और उनका उपदेश श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से सुनता था। उसने एक बार महात्मा तुकाराम से मन्त्रोपदेश की प्रार्थना की। पर उन्होंने शिवाजी को श्री रामदास स्वामी की शरण मे जाने की आज्ञा दी। शिवाजी ने पत्र लिखकर समर्थ रामदास को अपनी राजधानी में बुलाया, परन्तु वे नहीं आये। उन्होंने शिवाजी को पत्र मे लिखा—

"इस समय भूमण्डल मे ऐसा कोई नहीं है जो धर्म की रक्षा करे। महाराष्ट्र-धर्म तुम्हारे ही कारण बचा है। जहाँ जो कुछ थोड़ा-बहुत धर्म देख पड़ता है और साधु-जनों की रक्षा हो रही है, वह सब तुम्हारे ही कारण। तुम धन्य हो, तुमने दुष्टों का संहार किया है। वे लोग तुमसे डरते हैं। अब तुम्हे धर्म-स्थापन का काम सँभालना चाहिए। सब लोगों को सन्तुष्ट रखना, भले-बुरे की ख़ूब जाँच करना, न्याय और नीति का कभी त्याग न करना, लालच मे कभी न फँसना, सदा सावधान रहना। हमारा बोलना स्पष्ट है, इसलिए बुरा न मानना। श्रीरामचन्द्रजी कृपा करेंगे, तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे, इस विषय मे सन्देह बिलकुल मत करना।"

समर्थ श्री रामदास स्वामी का पत्र पढ़कर शिवाजी के धार्मिक और निष्ठायुक्त हृदय मे उनके दर्शन की उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गई। वह अपने साथियों समेत चाफल मे, समर्थ से मिलने, गया। परन्तु वे कहीं दूसरी जगह चले गये थे। इसलिए भेंट न हो सकी। शिवाजी उनको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते खड़ों जा

पहुँचा। वहाँ उसको समर्थ के दर्शन हो गये। समर्थ ने उसको मन्त्रोपदेश दिया।

शिवाजी का यह दृढ़ विश्वास था कि दुष्ट, दुरात्मा जनों का नाश और विपुल द्रव्य-प्राप्ति श्रीगुरुचरणों के प्रताप का फल है। इसलिए वह चाहता था कि समर्थ उसके निकट रहे। परन्तु रामदास स्वामी ने यह स्वीकार न किया। वे सदा घूमते-फिरते रहते थे। जब शिवाजी ने बहुत आग्रह किया तो वे सतारा के निकट सज्जनगढ़ के दुर्ग मे रहने लगे। शिवाजी और समर्थ का परस्पर कैसा सम्बन्ध था, यह आगे लिखी बातों से स्पष्ट हो जायगा।

एक दिन समर्थ माहुली-सङ्गम मे स्नान-सन्ध्या करके भिक्षा माँगते हुए सतारा में शिवाजी के महल मे गये और "जय जय श्री रघुवीर समर्थ" की गर्जना करके उन्होंने भिक्षा माँगी। समर्थ की वाणी सुनते ही शिवाजी का हृदय गद्गद हो गया। वह सोचने लगा कि ऐसे सत्पात्र सद्गुरु की झोली मे क्या भिक्षा डाली जाय। तुरन्त ही उसने एक काग़ज पर लिखा—"श्री समर्थ के चरणों में सब राज्य अर्पण है।" यह पुर्जा उसने समर्थ की झोली मे डाल दिया। समर्थ ने शिवाजी से पूछा—"क्यों शिवा, राज्य तो तुमने हमको दे दिया, अब तुम क्या करोगे?" शिवाजी ने हाथ जोड़कर विनती की कि आपकी चरण-सेवा में रहकर समय व्यतीत करूँगा। यह सुनकर समर्थ हँसे। उन्होंने कहा—"बाबा, जो जिसका काम है वह उसी को करना चाहिए।

पूर्वकाल में राजा जनक ने भी याज्ञवल्क्य को राज्य अर्पण किया था। उस समय उन्होंने राजा जनक को राजधर्म का उपदेश किया था। शिवा, हम वैरागियों को राज्य की क्या आवश्यकता है? मन्त्री तू ही बन और राज्य हमारा समझकर उसका प्रबन्ध कर।" इस उपदेश से शिवाजी का अन्तःकरण गद्‌गद हो गया। उसने समर्थ से कहा—"अब कृपापूर्वक मुझे अपनी पादुकाएँ दीजिए। उन्हीं को स्थापन करके मैं आपके मन्त्री की तरह राज-काज करूँगा।" समर्थ ने यह स्वीकार कर लिया। उस समय से शिवाजी ने अपना झण्डा भगवे रङ्ग का कर दिया। मराठों का 'भगवा झण्डा' इतिहास मे प्रसिद्ध है।

शिवाजी सामन्तगढ़ का क़िला बनवा रहा था। एक दिन किले में लगे हुए सैकड़ों मनुष्यों को देखकर उसके मन में यह विचार आया कि मैं इतने मनुष्यों का पालन कर सकता हूँ, इसलिए मुझे धन्य है। इस विचार के साथ ही साथ शिवाजी के मन में एक प्रकार का अभिमान भी आ गया। इसका पता किसी प्रकार समर्थ को भी लग गया। वे एक दिन अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। उन्हे देखकर शिवाजी ने दण्डवत् प्रणाम किया और अकस्मात् पधारने का कारण पूछा। समर्थ ने कहा—"तू श्रीमान् है; सहस्रों मनुष्यों का पालन करता है। इसलिए मैं तेरा वैभव देखने आया हूँ।" शिवाजी ने कहा कि यह सब आपकी ही कृपा का फल है। इस प्रकार बातें करते हुए समर्थ की दृष्टि समीप पड़े हुए एक पत्थर की ओर गई। समर्थ

ने शिवाजी से कहा कि इस पत्थर को अभी तुड़वा डालो। शिवाजी की आज्ञा से सब वेलदार उस पत्थर को तोड़ने लगे। समर्थ ने कहा—"इसमें धक्का न लगने पावे और दो टुकड़े बराबर करो।" पत्थर के दो टुकड़े होते ही भीतर के पोले भाग से कुछ पानी और एक जीवित मेंडकी निकल पड़ी। यह चमत्कार देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। समर्थ ने कहा—"शिवा, तुम्हारी योग्यता बहुत बड़ी है, और तुम्हारी लीला अगाध है। देखो, ऐसी आश्चर्यकारक बात किससे हो सकती है?" शिवाजी ने कहा—"इसमे मेरा क्या है?" समर्थ ने कहा—"क्यों नहीं? तुम्हारे सिवा और कर्त्ता कौन है? तुम्हारे विना जीवों का पालन और कौन कर सकता है?" शिवाजी अपने मन मे समझ गये और बोले—"मुझ पामर से कुछ नहीं हो सकता। इस दास को क्षमा कीजिए।" समर्थ ने कहा—"मैं क्षमा करने के लिए ही यहाँ, इस समय, आया हूँ। परन्तु इतना बता देना आवश्यक है कि भैया, तुम उस सरकार (जगदीश्वर) के बड़े नौकर हो। तुम्हारे हाथ से वह औरों को देता है, इतनी बात से तुम्हे इस प्रकार का अभिमान कभी नहीं करना चाहिए।" यह सुनकर शिवाजी को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उसने समर्थ के चरणों में गिरकर बार-बार क्षमा माँगी।

एक बार समर्थ ने परमेश्वर से शिवाजी महाराज के लिए इस प्रकार प्रार्थना की थी—"हे जगदीश्वर! मेरी आपसे केवल

एक प्रार्थना है। जो आपका सच्चा भक्त है, जिसने अपने जीवन को देश और धर्म की सेवा मे अर्पण कर दिया है, उस शिवाजी की आप रक्षा कीजिए। उसको मेरे देखते-देखते वैभव के शिखर पर चढा दीजिए। हम सुनते हैं, आप दुष्ट-दल-संहारक हैं। इस वात की प्रतीति आज करा दीजिए। हे पिता, अपने भक्तों का मनोरथ शीघ्र पूर्ण कीजिए। मैं अत्यन्त आतुर हो गया हूँ। इसलिए क्षमा कीजिए और मेरी इच्छा सफल कीजिए।"

जिस महत् कार्य के लिए श्रीरामदास स्वामी ने अपना सारा पुण्य खर्च किया, अपना सारा सामर्थ्य लगाया, उसे उनके इच्छानुसार भगवान् ने पूरा किया।

शिवाजी के समय वजाजी निम्बालकर और नेताजी पालकर नाम के दो मराठा सरदार मुसलमान हो गये थे। माता जीजाबाई ने आज्ञा दी कि "स्वराज्य के लिए इन दोनों सरदारों को पुनः हिन्दू बना लेना अत्यन्त आवश्यक है।" वस, फिर क्या था। उन दोनों को शिवाजी ने तुरन्त हिन्दू वना लिया। 'शुद्धि' हो जाने के बाद जीजाबाई ने अपनी भतीजी का विवाह निम्बालकर के साथ कर दिया, जिससे उनके हिन्दू होने मे किसी को कोई सन्देह न रहे।

बुद्ध
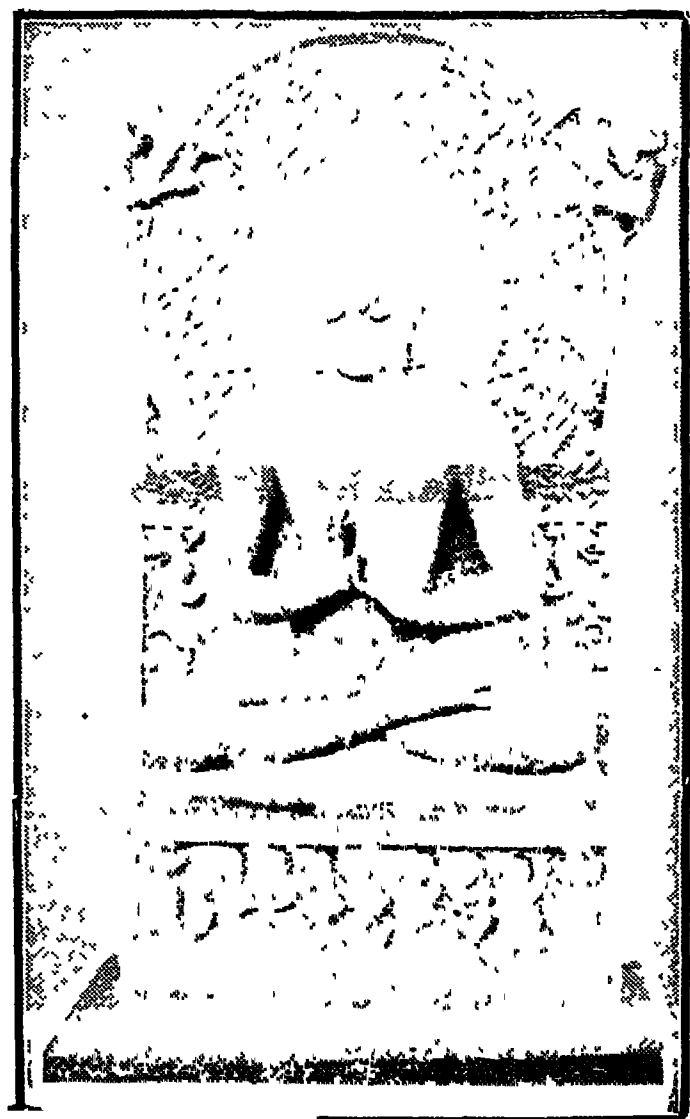
भगवान् बुद्ध

[श्री वेङ्कटेशनारायण तिवारी, स्वामी बोधानन्द महास्थविर, श्री चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु और श्री शरत्कुमार राय के ग्रन्थों से सङ्कलित]

गौतम बुद्ध केवल महापुरुष ही नहीं थे, वे तो महापुरुषों के भी महापुरुष थे। आर्य-जाति मे गौतम बुद्ध के समान और कोई दूसरा आज तक उत्पन्न नही हुआ। संसार मे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं उत्पन्न हुआ जो बराबरी करना तो दूर रहा, उनके पास भी फटक सके। उनके व्यक्तित्व की विशालता, महत्ता, वीरता और गम्भीरता को देखकर अनायास ही ज्ञात हो जाता है कि ये महापुरुष अपने बड़प्पन में हिमालय की उच्चतम चोटी से टक्कर लेते है। बुद्ध ने वास्तव मे मृत्यु को पराजित किया और निर्वाण-पद के साथ ही साथ अमरत्व को अपना लिया। इसी लिए दिन पर दिन ससार भगवान् बुद्ध के बताये मार्ग पर चलने के लिए बाध्य होता जायगा।

कहते है, आज से लगभग २६,०० वर्ष पहले नैपाल की तराई मे कपिलवस्तु नाम का एक राज्य था। उसके राजा का नाम शुद्धोदन था। वे राज्य के स्वामी न थे। उन दिनों कपिलवस्तु मे पञ्चायती राज्य था। उसी पञ्चायत के सरपञ्च

शुद्धोदन थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम महामाया और दूसरी का महाप्रजावती था। दोनों ही बहनें थीं। चालीस वर्ष की अवस्था तक शुद्धोदन के कोई सन्तान नहीं हुई। उसके बाद महामाया के गर्भ से गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म भी घर में नहीं हुआ। महामाया पति के घर से मायके जा रही थीं। मार्ग में लुम्बिनी वन पड़ता था। वहीं रानी विश्राम के लिए ठहर गई। थोड़ी देर के बाद पीड़ा आरम्भ हुई और एक शाल-वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ। जन्म के सात दिन बाद माता का निधन हो गया। मौसी विमाता रानी महाप्रजावती ने, माता की मृत्यु के बाद, बालक का पालन-पोषण किया।

भगवान् बुद्ध का वास्तविक नाम सिद्धार्थ था। जन्म के बाद ज्योतिषियों ने बताया कि बालक यदि घर में रहा तो चक्रवर्ती राजा होगा और घर छोड़कर चला गया तो योगिराज कहलायगा। थोड़ी ही आयु मे सिद्धार्थ ने विद्या प्राप्त कर ली। कहते हैं, धनुर्विद्या मे वे इतने कुशल थे कि कपिलवस्तु का कोई व्यक्ति उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। परन्तु क्या तो बाल्यावस्था मे और क्या युवावस्था मे, वे बहुत ही गम्भीर रहते थे। सासारिक बातों में उन्हे अधिक रुचि न थी। संसार दुःख से कैसे मुक्त हो, इसी उधेड़-बुन मे वे व्यस्त रहते थे।

सिद्धार्थ के समय मे चारों ओर अशान्ति थी। प्रचलित धार्मिक विचारों और रूढ़ियों से लोगों को तृप्ति नहीं होती थी।

आत्मा क्या है, संसार मे दुःख क्यों है, ईश्वर है या नहीं, जन्म और मरण, रोग और बुढ़ापे का चक्र क्या सदा चलता ही रहेगा या उससे कभी मुक्ति भी सम्भव है ? पशु-बलि, यज्ञ और कर्म-काण्ड, इनसे लोगों की श्रद्धा उठ गई थी। पुराने सोतों का पानी खारा मालूम होने लगा था। नये सत्य की खोज उस युग की विशेषता थी। बुद्ध को बचपन से ही इन चिन्ताओं ने घेर रक्खा था। गृहस्थी में रहते हुए भी वे गृहस्थी के न थे। घर मे थे परन्तु आँखों मे चाह थी वन की। कुटुम्बियो के बीच मे रहते थे, किन्तु चाह थी निर्जन की। विवाह हुआ, एक पुत्र भी हो गया। पत्नी का नाम यशोधरा था, पुत्र का राहुल। एक रात को व्याकुलता इतनी बढ़ी कि घर काटने लगा और घरवाले वैरी दिखाई देने लगे। बात यह है कि सिद्धार्थ जन्म से ही वन के पक्षी थे। गृहस्थी के पिंजड़े में वे कब तक बन्द रह सकते थे। आधी रात को उठे। सोती हुई पत्नी और सोते हुए दुधमुँहे बालक पर एक दृष्टि डाली और राज-भवन के बाहर हो गये।

बाहर चेतक घोड़ा सजा खड़ा था; पास ही छन्दक सारथी था। घोड़े पर सवार हो और छन्दक को साथ लेकर सिद्धार्थ चल पड़े। पैंतालीस मील चलने के बाद अणोमा नदी के तीर पर पहुँचे। वहाँ पर वे घोड़े से उतर पड़े। उन्होंने राजसी कपड़े उतारकर फेंक दिये और तलवार से केश काट डाले। छन्दक और चेतक से विदा होकर वे जङ्गल मे विलीन हो

गये। चलते-चलते वे राजगृह पहुँचे। वहाँ उस समय राजा विम्बिसार राज्य करते थे। अपने समय के प्रसिद्ध धर्माचार्यों और सिद्धों से सिद्धार्थ मिले। परन्तु उन्हे कहीं शान्ति न मिली। उसके बाद सात वर्ष तक उन्होंने निरन्तर घोर तपस्या की। तन सूखकर ठठरी हो गया। परन्तु जिस वस्तु की खोज मे उन्होंने घर-बार छोड़ा था वह इतने घोर तप के बाद भी उनके हाथ न आई। तप इतना उग्र था कि वे अचेत हो गये। अन्त में जब चेत हुआ तब इस उग्र तप की निस्सारता का उन्होने अनुभव किया और उसी समय उसे त्याग दिया। फिर निरञ्जना नदी में पहुँचे और वहाँ स्नान करने के पश्चात् किनारे पर एक पीपल के पेड़ तले बैठ गये। बैठे ही थे कि सुजाता नाम की एक अहीरिन ने उन्हे वन-देवता समझकर खीर की भेट चढ़ाई। इस खीर को खाने से उनके शरीर मे बल आया। इसके पश्चात् वे समाधि लगाकर उसी पेड के नीचे बैठ गये। इस बार उनकी तपस्या सफल हुई। जिस बात की खोज के लिए वे घर से निकले थे वह उन्हें मिल गई। उन्हें जीवन-मरण की पहेली का रहस्य मालूम हो गया। वे साक्षात् बुद्ध हो गये। उस घडी से सिद्धार्थ का नाम भी मिट गया। इस प्रकार सम्यक् सम्बुद्ध होकर भगवान् ने यह उदान कहा—

अनेकजातिसंसारं संधाविस्सं अनिब्बिस।
गहकारकं गवेस्सन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनं ॥
गहकारक दिट्ठोसि पुन गेह न काहसि।

सव्वा ते फासुका भग्गा गहकूट विसङ्खितं ।
विसङ्खारगतं चित्तं तण्हानं खयमज्झगा ॥

अर्थ—इस भव-रूप संसार में अनेक जन्म लेकर मैं भ्रमण करता वरावर गृहकारक को ढूँढ़ता रहा और वार-वार जन्म लेने के दुःखों को सहता रहा। किन्तु अब मुझे गृहकारक दिखाई दिया और अब मुझे गृह करना शेष नहीं रहा। अब मेरे सब वन्धन टूट गये, और गृह-रूपी शिखर चूर्ण हो गया, एवं संसार की सभी वासनाओं का विनाश हो जाने से मेरा चित्त निर्वाण-पद को प्राप्त हो गया।

निरञ्जना नदी के तट पर बुद्धत्व लाभ होने के वाद वे सार-नाथ की ओर चले। वहाँ पहुँचकर अपने पूर्वपरिचित पाँच ब्रह्मचारियों को उन्होंने वह नया सन्देश सुनाया जो उन्हें निर-ञ्जना नदी के किनारे पीपल के पेड़ के नीचे प्राप्त हुआ था। इस महा उपदेश का नाम है 'धर्मचक्र-प्रवर्तन-सूत्र'। इसी मे बुद्ध के सब सिद्धान्तों और उपदेशों का सार है। यही पॉच ब्रह्मचारी उनके शिष्य हुए। धीरे-धीरे उनके शिष्यों की संख्या वढ़ने लगी। साधु, सन्यासी और गृहस्थ बुद्ध के चरणों मे आकर उपदेश लेने लगे। राजभवन मे भी उनके उपदेशों की गूँज पहुॅची। अनेक रानियाँ और राजा उनके सम्प्रदाय मे सम्मि-लित हो गये। मगध के राजा विम्बिसार, उनके पुत्र अजातशत्रु, और कौशाम्बी के राजा उदयन की रानी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अस्सी वर्ष की अवस्था तक वे वर्ष के आठ मास निरन्तर भ्रमण करने, उपदेश देने और पीड़ित आत्माओं की वेदना दूर करने मे संलग्न रहे। उन्होंने करुणा का सागर वहा दिया और संसार पशु-वलि के पाप से घृणा करने लगा। कर्म का अर्थ ही उन्होंने वदल दिया। वाहरी कर्म-काण्ड के स्थान मे उन्होंने अन्तःकरण की निर्मलता को रक्खा, और लोगों को वताया कि किसी देवी-देवता की उपासना से नहीं, किन्तु आत्म-शुद्धि के द्वारा ही मनुष्य परमपद को प्राप्त कर सकता है। अन्त में अस्सी वर्ष की अवस्था मे वैशाख शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को कुशीनगर अथवा आधुनिक कसिया मे उनका निधन हुआ। उस दिन निर्मल ज्ञान की एक अद्वितीय ज्योति वुझ गई। निर्मल विवेक और सर्वथा निर्द्वन्द्व दृष्टि का खम्भा टूट पड़ा। वह तेज-पुञ्ज, जिसका प्रकाश दिग्दिगन्त को और भविष्य की अगणित पीढ़ियों को आलोकित कर रहा था, सदा के लिए उसी अनन्त सागर के गर्भ मे समा गया जिससे वह निकला था। उस दिन ऐसे पुरुष का निधन हुआ जो वेजोड़ था, वेजोड़ है और वेजोड़ रहेगा। तब से जब से सृष्टि का क्रम वँधा और तव तक जव तक सृष्टि का क्रम वँधा रहेगा।

अब हम भगवान् वुद्ध के जीवन की कुछ घटनाएँ लिखते है।

कुलपुत्त यस्स एक वडे सेठ का लडका था। वह सहस्रों सुन्दर रमणियो के साथ दिन-रात विलास करता था। एक दिन, रात के समय, नृत्य-वाद्य आदि के अनन्तर जव सब सो रही थीं,

अचानक कुमार यश की निद्रा खुल गई। वह उठा। दीपक के प्रकाश मे उसने देखा कि जो सुन्दरियाँ थोडी देर पहले वस्त्राभूपणों से सुसज्जित थीं एवं नाना प्रकार के हाव-भाव और विलास-कौशल से उसे लुभा रही थीं, इस समय इधर-उधर अचेत पडी हैं; उनके केश बिखरे हैं; मुख से लार बह रही है; गुप्त अङ्ग खुले हैं और वे खर्राटे ले रही है। इस श्मशान-सदृश वीभत्स दृश्य को देखकर कुमार यश के मन मे तीव्र वैराग्य का उदय हुआ। वह 'हा, सन्तप्त! हा सन्तप्त!!' कहता हुआ अपने सुनहले जूते पहनकर व्याकुल सा ऋषिपत्तन मृगदाव वन की ओर चल दिया। वहाँ प्रातःकाल भगवान् खुले मैदान मे टहल रहे थे। कुमार यश की वाणी सुनकर भगवान् ने कहा—"हे यश! तू असन्तप्त है, अपीड़ित है। आ, मेरे पास बैठ; मैं तुझे धर्म का तत्त्व सुनाऊँ।" तीव्र वैराग्य से विक्षिप्त कुमार, प्रणाम करके, उनके निकट बैठ गया। भगवान् ने उसे दान, शील, स्वर्ग, काम आदि की कथा सुनाकर दुःख, दुःख का कारण, दुःख का नाश और दुःख-नाश के उपाय, इन चारों आर्य सत्यों का उपदेश किया। यश के हृदय-नेत्र खुल गये। उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

एक समय भगवान् राजगृह के लट्ठीवन में विराजमान थे। मगध के महाराज बिम्बिसार कई विद्वान् ब्राह्मणों को साथ लेकर उनके दर्शनों को गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि मगध के महाविद्वान् तीन काश्यप, अपने शिष्यो सहित, प्रव्रज्या

लेकर भगवान् के निकट बैठे हैं। राजा के साथ आये हुए ब्राह्मणों ने काश्यप-बन्धुओं से कौतूहल-पूर्वक पूछा—"विद्वान् ब्राह्मणो, आपने वैदिक अग्निहोत्र आदि किस लिए त्याग दिया है?" उरुविल्व काश्यप ने कहा—"ब्राह्मणो, यज्ञों का फल केवल स्वर्ग-मात्र है, जो काम-सुख भोगों का स्थान है, परिवर्तनशील और अनित्य है; उसकी सहायता से जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु से छुटकारा नहीं मिलता; इसलिए मैं उसे त्यागकर अमृत-रूपी निर्वाण की प्राप्ति के लिए सम्यक् सम्बुद्ध की शरण में आया हूँ।"

यह सुनकर ब्राह्मणों को परम सन्तोष हुआ। दूसरे दिन भगवान् नगर के भीतर होकर राजप्रासाद की ओर भोजनार्थ चले। मार्ग में दोनों ओर दर्शक-दर्शिकाओं की भीड लग गई। भगवान् की उज्ज्वल ज्योति, दिव्य लावण्य, सौम्य मूर्त्ति, प्रसन्न एवं करुणापूर्ण दृष्टि, आजानुलम्बित बाहु, विशाल वक्षः-स्थल, उन्नत ग्रीवा, शान्त विनीत गम्भीर एवं पीत-चीवर-वेष्टित स्वरूप के दर्शन करके अलौकिक आनन्द का उद्रेक होता था। आगे-आगे भगवान् थे, उनके पीछे उनके पीतवस्त्रधारी शिष्यों की पंक्ति थी। महाराज बिम्बिसार ने राजपरिवार-सहित उनका भक्ति-गद्गद और प्रेम-विह्वल भाव से स्वागत किया।

भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनने के लिए धर्म-परायण लोग दूर दूर से आते थे। कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन ने जब सुना कि राजकुमार गौतम ने अलौकिक जीवन प्राप्त किया है और उनके अमृतमय उपदेश को सुनकर सहस्र-सहस्र प्राणी पवित्र

और प्रव्रजित हो रहे हैं तो उन्होंने भी भगवान् को अपने यहाँ निमन्त्रित किया। पहले तो वे आये नहीं, परन्तु बाद को उन्होंने मान लिया। जब वे कपिलवस्तु में पहुँचे तो तरह तरह से उनका पूजन और स्वागत किया गया। वहाँ वे न्यग्रोधाराम मे ठहरे।

दूसरे दिन भगवान् बुद्ध शिष्यों सहित भिक्षा माँगने के लिए कपिलवस्तु नगर के भीतर गये और घर-घर भिक्षा माँगने लगे। उनको इस प्रकार साधुवेश में भिक्षा माँगते देख नगर में हाहाकार मच गया। महाराज शुद्धोदन को बड़ा दुःख हुआ। वे अत्यन्त कातर स्वर से बोले—"बेटा, तुम घर-घर भीख माँगकर मुझे लज्जित क्यों करते हो? क्या तुम समझते हो कि मैं तुम्हे और तुम्हारी शिष्य-मण्डली को भोजन नहीं दे सकता?" बुद्ध ने कहा—"महाराज! भिक्षा माँगकर खाना हमारा कुल-धर्म है।" राजा ने विस्मित भाव से कहा—"बेटा! हम क्षत्रिय हैं। हमारे कुल मे कभी किसी ने भीख नहीं माँगी।" बुद्ध ने उत्तर दिया—"महाराज, मैं अब राजवंश में नहीं हूँ, मेरे पूर्व-पुरुष बुद्ध लोग हैं। बुद्ध लोग सदा से भिक्षा माँगकर ही भोजन करते आये हैं।"

यह सुनकर राजा शुद्धोदन विकल हो उठे। भगवान् बुद्ध ने उनको निर्वाण-धर्म का उपदेश किया और अन्त मे कहा—"पिता, उठो। आलस्य मत करो। सद्धर्म का आचरण करो। धर्म करनेवाला इस लोक और परलोक दोनों मे सुख से रहता है।" उपदेश के बाद महाराज शुद्धोदन उनको राजभवन मे ले

गये। वहाँ राजपरिवार के और सब लोग तो भगवान् का उपदेश सुनने आये, परन्तु बुद्ध की पत्नी यशोधरा नहीं आई। वह बोली—"यदि मुझमें गुण हैं तो आर्यपुत्र स्वयं मेरे पास आयेंगे। आने पर ही वन्दना करूँगी।" अहा! जो एक दिन राजकुमार के रूप में उस राजभवन मे निवास करते थे, वही आज भिक्षु-रूप से उसमे विराजमान हैं। कैसा मर्म-स्पर्शी दृश्य है! उस समय बुद्ध के शरीर से स्वर्गीय शोभा का विकास हो रहा था।

उपदेश देने के अनन्तर भगवान् अपने दो प्रधान शिष्यों—सारिपुत्र और मौद्गलायन—के साथ यशोधरा के भवन में गये। पति-वियोग में तपस्विनी यशोधरा अपने प्राणनाथ को सिरमुँडे, काषाय वस्त्र पहने, संन्यासी-रूप मे आते देख दौड़कर उनके चरणों मे गिर पडी और अपने तप्त अश्रु-जल से उनके चरणों को धोने लगी। फिर वह उठकर अलग खड़ी हो गई।

महाराज शुद्धोदन ने राजकुमारी के स्नेह की प्रशंसा की। वे बोले—"जब से इसने सुना कि आपने काषाय वस्त्र पहने है, तभी से यह भी काषाय वस्त्र पहनती है। आप एक बार भोजन करते है, यह सुनकर यह भी एकाहारिणी हो गई है। आप ऊँचे पलँग पर शयन नहीं करते, यह सुनकर यह भी भूमि पर सोती है। माला, गन्ध, चन्दन का स्पर्श नहीं करती। अहर्निश आप ही का ध्यान और आप ही की मङ्गल-कामना किया करती है। भगवन्, हमारी बहू इस प्रकार तपस्विनी होकर जीवन बिताती है। आप इसे उचित उपदेश देकर सन्तुष्ट कीजिए।"

यशोधरा की पवित्र चर्या सुनकर भगवान् सन्तुष्ट हुए और उसके पूर्व जन्म की कई कथाएँ सुनाकर उन्होंने उसे शान्ति प्रदान की।

इसके कुछ दिन पश्चात् एक दिन फिर भगवान् निमन्त्रित होकर राजभवन मे गये। जब वे भोजन करके बाहर जा रहे थे तो यशोधरा ने अपने पुत्र राहुल को भगवान् की ओर सङ्केत करके कहा—"पुत्र ! वह जो तेजोमय योगिराज भिक्षुसंघ के आगे आगे जा रहे हैं वह तुम्हारे पिता है। उनके निकट जाकर तुम अपना पैतृक स्वत्व माँगो।" राहुल ने वैसा ही किया। भगवान् उसे अपने साथ न्यग्रोधाराम मे ले गये। वहाँ जाकर उसके घुँघराले सुन्दर केश काटकर उसका मुण्डन करवाया और उसको पीले वस्त्र पहनाये। राहुल ने सब भिक्षुओं को प्रणाम किया और "बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि" का तीन बार उच्चारण किया। इस प्रकार प्रव्रजित कर बुद्ध ने उसे सङ्घ में सम्मिलित कर लिया। जब राजा शुद्धोदन ने यह समाचार सुना तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने बुद्ध के पास जाकर उनसे यह वचन ले लिया कि वे भविष्य मे किसी नवयुवक को, उसके माता-पिता की अनुमति लिये बिना, प्रव्रजित नहीं करेंगे।

चाण्डाल-कन्या प्रकृति को दीक्षा

एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती मे विराजमान थे। उनके प्रिय शिष्य आनन्द नगर मे भिक्षा के लिए गये। मार्ग में उन्हे

प्यास लगी। एक कुएँ पर एक चाण्डाल-कन्या पानी भर रही थी। लड़की का नाम प्रकृति था। उससे आनन्द ने पानी माँगा। प्रकृति बोली—"हे भिक्षु, मैं चाण्डाल की लड़की हूँ। मै आपको कैसे पानी दे सकती हूँ ?" आनन्द ने कहा—"बहिन, मैं कुल या जाति नहीं पूछता; मुझे पानी दो।" प्रकृति ने आनन्द को पानी दिया। पानी पीकर आनन्द चल दिये। प्रकृति को आनन्द के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। फल यह हुआ कि प्रकृति को भगवान् बुद्ध के साक्षात् दर्शन प्राप्त हुए और भगवान् ने अनुकम्पा करके उसे धर्मोपदेश दिया और अपने भिक्षुणी-संघ मे सम्मिलित कर लिया।

इस समाचार को सुनकर श्रावस्ती के सब ब्राह्मण कहने लगे—"गौतम बुद्ध ने चाण्डाल-कन्या को दीक्षा दे दी है; देखे, वह ब्राह्मण-क्षत्रियों के घरों मे कैसे भिक्षा माँगने जाती है ?" उन्होंने श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित् को भी इस घटना के विरुद्ध भड़काया। राजा उत्तेजित हो स्वय रथ पर चढ़कर यह बात पूछने के लिए भगवान् के पास आये और भगवान् से इसकी चर्चा की। तब भगवान् बुद्ध उनसे इस प्रकार कहने लगे—"राजन्, त्रिशङ्कु चाण्डालों का एक राजा था। शार्दूलकर्ण उसका पुत्र था। वह बहुत सुन्दर था। उसने विधिवत् सब शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी। त्रिशङ्कु को अपने लड़के के लिए कन्या की आवश्यकता हुई। वह एक ब्राह्मण पुष्करसारी के पास गया और उससे उसकी कन्या, अपने बेटे के लिए, माँगी।

ब्राह्मण ने कहा—"तुम चाण्डाल हो। मैं ब्राह्मण हूँ। चाण्डाल चाण्डाल के साथ और ब्राह्मण ब्राह्मण के साथ नाता जोड़ते हैं। मुझसे यह अनुचित प्रस्ताव कर तुमने मेरा अपमान किया है।"

त्रिशङ्कु ने उत्तर दिया—"हे पुष्करसारी! ब्राह्मण और चाण्डाल दोनों एक ही योनि मे उत्पन्न होते है। ब्राह्मण कुछ आकाश से नहीं आते। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल नाम हैं। ये मनुष्य के बनाये है। जिस प्रकार बालक सड़क पर खेलते हैं और मिट्टी के खिलौने बनाकर आप ही उनके भिन्न-भिन्न नाम रख लेते है; किसी को खीर, किसी को दही, किसी को घी कहते हैं; परन्तु उन बालकों के कहने से वे खिलौने वैसे नही बन जाते, इसी प्रकार मनुष्यों के ब्राह्मण, क्षत्रियादि भिन्न भिन्न नाम लेने से उनमे कोई भेद नहीं हो जाता। उनके आँख, नाक, कान, मुख सब एक ही प्रकार के होते हैं। जैसा भेद गाय, घोड़े, गदहे, भेड़, बकरी आदि पशुओं की जातियों में एक दूसरे मे पाया जाता है, वैसा भेद मनुष्यों के चार वर्णों मे नहीं दिखाई देता। सब मनुष्य एक ही पिता परमेश्वर की सन्तान हैं, इसलिए वे एक दूसरे से भिन्न नहीं हो सकते।"

ऐसी ही बहुत सी बाते पुष्करसारी ने सुनीं, पर उससे उनका कोई उत्तर न बन पड़ा। अन्त मे यह जानकर कि त्रिशङ्कु सब शास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता है, उसने अपनी कन्या का विवाह उसके पुत्र शार्दूलकर्ण से पक्का कर दिया। आचार्य के इस निर्णय को सुनकर उसके ब्रह्मचारियों ने उससे कहा—"जब इतने

ब्राह्मण पाये जाते हैं; तब आपका चाण्डाल से सम्बन्ध जोड़ना ठीक नहीं।" परन्तु पुष्करसारी ने उत्तर दिया—जो त्रिशङ्कु कहता है, वह ठीक है और मैं वैसा ही करूँगा।

भगवान् के मुख से यह कथा सुनकर महाराज प्रसेनजित् को बोध हो गया। वे बड़े ही आह्लादित हुए। उनका वर्णाभिमान का सन्देह दूर हो गया। वे भगवान् की चरण-वन्दना करके चले गये।

अनाथपिण्डद की कथा

एक समय की बात है, श्रावस्ती नगरी का निवासी सुदत्त नामक एक सत्यधर्मानुरागी धनवान् व्यक्ति महापुरुष बुद्धदेव के दर्शन करने राजगृह गया। वह दरिद्रों का मित्र और निराश्रयों का आश्रय था। अनाथों को अन्न देने के कारण वह अनाथपिण्डद नाम से प्रसिद्ध था। बुद्धदेव ने उसे मधुर धर्मोपदेश से प्रसन्न किया। उनका धर्मोपदेश सुनकर अनाथपिण्डद मुग्ध हो गया। उसने निश्छल भाव से कहा—

"भगवन्, आपके शिष्य गृह-त्यागी साधु-जीवन की शान्ति की प्रशंसा और सांसारिक जीवन की अशान्ति की निन्दा करते हैं। वे कहते हैं—आपने सब प्रकार की सम्पत्ति और भोग-विलास त्याग कर धर्मराज्य की अचल प्रतिष्ठा की है और संसारी मनुष्यों के लिए निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग का दृष्टान्त दिखाया है।

"प्रभो, शुभ कर्म में नियुक्त रहकर भी मैं लोक-सेवा के पीछे व्याकुल रहता हूँ। इस समय मुझे यह पूछना है कि परम

कल्याण-प्राप्ति के निमित्त क्या मुझको धन-सम्पत्ति, घर-द्वार और वाणिज्य-व्यवसाय त्याग कर उदासीन होना पड़ेगा?"

बुद्ध ने कहा—"जो आर्य मार्ग का अवलम्बन करेंगे वही शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। जिन्हें ऐश्वर्य का नशा चढ़ा हुआ है उनके लिए उसका त्याग करना ही अच्छा है, किन्तु धन-सम्पत्ति में जिनकी आसक्ति नहीं, जो प्रसन्न मन से अपने धन को लोकोपकारी कार्य मे खर्च कर सकते हैं, उनको सम्पत्ति-परित्याग करने की कोई आवश्यकता नहीं।

"मेरी बात सुनो। तुम मर्यादा-सहित अपने पद पर प्रतिष्ठित रहकर अपनी शक्ति के अनुसार वाणिज्य-व्यवसाय और श्रीवृद्धि करो। मेरा धर्म किसी को व्यर्थ गृहहीन नहीं बनाता। मेरा धर्म अहङ्कार, मलिनता और भोग-विलास त्याग कर सन्मार्ग मे विचरण करने के लिए लोगों को बुलाता है।"

बुद्ध की पवित्र वाणी सुनकर अनाथपिण्डद आनन्द से पुलकित हो गया। उसने जहाँ अपनी विपुल सम्पत्ति द्वारा भगवान् बुद्ध के धर्म-प्रचार में सहायता दी, वहाँ महासुभद्रा और चुलसुभद्रा नामक अपनी दो कन्याएँ भी बौद्ध सङ्घ की सेवा के लिए अर्पण कर दीं।

भगवान् बुद्ध एक समय वैशाली मे थे। वहाँ आम्रपाली नाम की एक वेश्या ने उनके पास जाकर उन्हें, अपने यहाँ भोजन के लिए, निमन्त्रण दिया। साधारण लोगों की दृष्टि मे पतिता प्रतीत होने पर भी उसके प्रति महापुरुष के हृदय मे कोई घृणा

नहीं थी। उन्होंने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन उन्होंने यथासमय शिष्यों के साथ आम्रपाली के घर जाकर भोजन किया। उनकी धर्म-वाणी से पतिता स्त्री की बोधि जागृत हो गई। आम्रपाली के जीवन की गति कल्याण की ओर प्रधावित हुई। उसने अपना उद्यान-भवन साधु-संन्यासियों के लिए दान कर दिया।

भगवान् बुद्ध जाति-भेद के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा है—गङ्गा-यमुना प्रभृति बड़ी बड़ी नदियाँ अनेक दिग्देशों मे उत्पन्न होकर भी जैसे समुद्र में मिलकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता और नाम खो देती हैं, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि सब जातियों के मनुष्य सत्य धर्म ग्रहण करते ही अपनी जाति और गोत्र खोकर एक हो जाते है। नाई उपालि हीन जाति का होने पर भी महापुरुष बुद्ध का दहना हाथ हो गया। नवीन धर्म के प्रभाव से वह शूद्र न रहा; वह परम साधु, अर्हत् और सत्य धर्म का व्याख्याता होकर अत्यन्त सम्मानित हुआ।

थेर-गाथा मे एक थेर ने अपने मुँह से अपना जीवन-वृत्तान्त इस प्रकार कहा है—मेरा जन्म नीचकुल में हुआ था। मेरा व्यवसाय भी बुरा था। लोग मेरा अपमान करते थे। मैं सिर झुकाकर सबका सम्मान करता था। इसके बाद मैंने महानगरी मगध में भिक्षुओं के साथ भगवान् बुद्धदेव का दर्शन किया। उनका दर्शन पाते ही मेरा चित्त भक्ति से झुक गया।

मैंने सिर का बोझा फेककर उनके श्रीचरण-कमलों में आत्म-समर्पण कर दिया। जब उन लोकमान्य ने मुझपर दया की तब मैंने उनका अनुचर शिष्य होना चाहा। करुणामय प्रभु ने तुरन्त मुझे शरण देकर कहा—आओ साधु, मेरे साथ आओ।

सुरापरान्त देश-निवासी पूर्ण नामक एक व्यापारी श्रावस्ती मे व्यापार के लिए आया। उसे भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनने का सौभाग्य मिला और उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ले ली। बौद्ध धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से जब वह अपने देश को जाने लगा तब भगवान् बुद्ध ने उससे कहा—"हे शिष्य, तू जिस देश मे धर्म-प्रचार के लिए जा रहा है वहाँ के लोग बहुत ही दुष्ट, कट्टर और अत्याचारी है। वे जब तेरी निन्दा करने लगेंगे अथवा तुझको अपशब्द कहने लगेगे तब तू क्या करेगा?"

पूर्ण ने उत्तर दिया—"मैं बिलकुल चुप रहूँगा।"

"और यदि वे पकड़कर तुझको पीटेंगे तो तू क्या करेगा?"

"मैं उनको बदले मे नही मारूँगा।"

"अच्छा, यदि वे तुझे पकड़कर तेरा वध करना चाहे तो?"

"मै उनको धन्यवाद दूँगा, क्योंकि इससे मैं संसार के त्रिविध तापों से अनायास ही मुक्त हो जाऊँगा। अतएव मैं उनके प्रयत्न में बाधा नही डालूँगा।"

पूर्ण का उत्तर सुनकर बुद्धदेव बहुत प्रसन्न हुए। यह सोच-कर कि धर्म-प्रचार करने के लिए ऐसे ही दृढ़ और सहनशील पुरुष की आवश्यकता है, उन्होंने पूर्ण को आशीर्वाद देकर विदा किया।

बुद्धदेव के परिनिर्वाण का समय समीप हो आया। वे मृत्यु को गले लगाने के लिए तैयार बैठे हैं। एक दिन उन्होंने बात ही बात मे आनन्द से कहा—"आनन्द, मेरी परिनिर्वाण-प्राप्ति का शुभ दिन निकट आ गया।" यह सुनकर आनन्द का हृदय शोक से विदीर्ण हो गया। उसकी आँखों मे आँसू उमड़ आये। उसे शोकाकुल देख बुद्ध ने गम्भीर स्वर में कहा—"आनन्द, क्या तुम विश्वास को खो बैठे? क्या मैंने तुमसे यह बात बार-बार नहीं कही है कि लोगों का प्रिय वस्तु से विच्छेद अवश्यम्भावी है? जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु होगी ही। यही संसार का नियम है। इसलिए कैसे हो सकता है कि मै अजर अमर होकर इस मर्त्यलोक मे सदा बैठा रहूँ?

"आनन्द, तुम लोग आप ही अपने अवलम्ब बनो। किसी दूसरे की सहायता की प्रत्याशा न करो। आप ही अपने लिए प्रदीप बनो। धर्म ही दीप है। उस दीप को दृढ़ हाथ से पकड़ो। सत्य को सहायक बना मुक्ति-मार्ग की खोज करो।

"आनन्द, यह मत समझो कि अपने लिए स्वयं प्रदीप और अवलम्ब होना असम्भव है। सङ्घ के भिक्षु लोग यदि धर्म-साधना के द्वारा अपने अन्तर के निगूढ़ प्रदेश मे रहने लगें, तब तो वे दैहिक क्लेश, प्रवृत्ति की ताड़ना और तृष्णा से उत्पन्न सभी दुःखों से बच सकेंगे।"

बुद्धदेव बडी लगन से आजीवन अपने धर्म का प्रचार करते रहे। उनके अनगिनत शिष्य हुए। उस समय के भारतवर्ष

के बहुत से राजाओं ने भी उनके धर्म को अपनाया तथा न केवल भारतवर्ष मे वरन् सुदूरवर्ती बाहरी देशों मे भी प्रचारकों ने बौद्ध धर्म की पताका फहराई। बौद्ध-धर्म के इस व्यापक प्रचार का मुख्य कारण यही है कि उसकी शिक्षाएँ मनुष्य-मात्र के कल्याण और आत्मोन्नति मे सहायक हुई है। नीचे भगवान् बुद्ध के कुछ उपदेश पराभवसुत्त (सुत्तनिपात) से उद्धृत किये जाते है:—

१. उन्नति की ओर जानेवाला मनुष्य आसानी से पहचाना जा सकता है और पतन की ओर जानेवाला मनुष्य भी आसानी से पहचाना जा सकता है। धर्मप्रेमी उन्नत होता है और धर्म-द्वेषी अवनत।

२. जो असन्तों से प्रेम करता है, सन्तों से नहीं, जिसे मिथ्या-धर्म अच्छा लगता है उसका पतन होता है।

३. जो अधिक सोता है, जो अधिक गप्पें मारता है, जो किसी काम मे उत्साह नहीं दिखाता, जो आलसी है, जो क्रोधी है उसका पतन होता है।

४. जो अपने पास पर्याप्त धन रहते भी अपने वृद्ध माता-पिता का पालन नहीं करता उसका पतन होता है।

५. जो किसी श्रमण-ब्राह्मण अथवा किसी भिखमंगे को झूठ बोलकर ठगता है उसका पतन होता है।

६. जिसके पास धन-धान्य और सम्पत्ति बहुत है, जो अकेला ही उसका उपभोग करता है उसका पतन होता है।

७. जाति-मान, धन-मान तथा गोत्र-मान के कारण जो अभिमान करता है उसका पतन होता है।

८. स्त्री, शराब तथा जूए के फेर में पड़कर जो आदमी अपनी कमाई को नष्ट करता जाता है उसका पतन होता है।

९. अपनी पत्नी से असन्तुष्ट हो जो पराई स्त्री या वेश्या की ओर देखता है उसका पतन होता है।

१०. मत्स्य-मांस की लोभी या धन को फजूल खर्च करनेवाली स्त्री अथवा ऐसे ही आदमी को जो किसी ज़िम्मेदारी के पद पर रखता है उसका पतन होता है।

११. जिसमें सामर्थ्य नहीं है लेकिन तृष्णा अधिक है, वह यदि (केवल) क्षत्रिय-कुल में पैदा होने के कारण राज्य की अभिलाषा करता है तो उसका पतन होता है।